“कहानी प्रत्युष”

पाठ्य-पुस्तक

बी.सी.ए / बी.एस.सी (FAD)
(B.C.A., B.Sc.(FAD)- Language under AECC
for the year 2021-22 onwards)

द्वितीय सेमिस्टर/ II SEMESTAR

संपादक
डॉ. नीता हिरेमठ
डॉ. प्रभु उपासे
डॉ. सुधामणी. एस

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु – 560001

KAHANI PRATYUSH

Edited by:

Dr. Neeta Hiremath

Dr. Prabhu Upase

Dr. Sudhamani. S

@बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण – 2021

Pages: 87

प्रधान संपादक

डॉ. शेखर

मूल्य :-

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरू – 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021-22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी-2020 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी है। एन.ई.पी. सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर जी के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह कहानी संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

प्रधान संपादक की कलम से.....

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एन.ई.पी.सेमिस्टर पध्दति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को नयी शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। कहानी के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किये गए हैं। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष (बी.ओ.एस)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कहानियाँ	लेखक	पृ. सं.
I.	भूमिका		03
II.	प्रधान संपादक की कलम से.....		04
1.	सिकंदर की शपथ - जयशंकर प्रसाद		06-13
2.	एक गौ - जैनेन्द्र कुमार		14-31
3.	ठेस - फणीश्वरनाथ रेणु		32-41
4.	जानवर और जानवर-मोहन राकेश		42-54
5.	हृदय की पुकार -अ. न. कृष्णराव		55-70
6.	पाँचवाँ बेटा -नासिरा शर्मा		71-87

1. सिकंदर की शपथ

लेखक: जयशंकर प्रसाद

लेखक परिचय:-

प्रसाद जी का जन्म सन् 1889ई. में हुआ तथा मृत्यु सन् 1937 ई में हुई। प्रसाद जी का जन्म वाराणसी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। बचपन में ही पिता के निधन से पारिवारिक उत्तरदायित्व का बोझ इनके कंधों पर आ गया। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंध पहले घर पर ही हुआ। बाद में इन्हें क्वीन्स कॉलेज में अध्ययन हेतु भेजा गया। आठवीं तक औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद स्वाध्याय द्वारा उन्होंने संस्कृत, पाली, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का विशद ज्ञान प्राप्त किया।

प्रसाद जी छायावाद के कवि, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार आदि रहे। इनके आने से ही हिंदी काव्य में खड़ी बोली के माधुर्य का विकास हुआ। यह आनंदवाद के समर्थक थे। इनके पिता बाबू देवीप्रसाद विद्यानुरागी थे, जिन्हें लोग सुँघनी साहु कहकर बुलाते थे। कामायनी इनका अन्यतम काव्य ग्रन्थ है, जिसकी तुलना संसार के श्रेष्ठ काव्यों से की जा सकती है। सत्यं शिवं सुन्दरम् का जीता जागता रूप प्रसाद के काव्य में मिलता है। मानव सौन्दर्य के साथ-साथ इन्होंने प्रकृति सौन्दर्य का सजीव एवं मौलिक वर्णन किया। इन्होंने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया है।

सूर्य की चमकीली किरणों के साथ, यूनानियों के बरछे की चमक से मिंगलौर - दुर्ग घिरा हुआ है। यूनानियों के दुर्ग तोड़नेवाले यन्त्र दुर्ग की दीवारों से लगा दिये गये हैं और वे अपना कार्य बड़ी शीघ्रता के साथ कर रहे हैं। दुर्ग की दीवार का एक हिस्सा टूटा और यूनानियों की सेना उसी भन्न मार्ग से जयनाद करती हुई घुसने लगी। पर वह उसी समय पहाड़ से टकराये हुए समुद्र की तरह फिरा दी गयी और भारतीय युवक वीरों की सेना उनका पीछा करती हुई दिखाई पड़ने लगी। सिकंदर उनके प्रचण्ड अस्त्राघात को रोकता पीछे हटने लगा।

अफगानिस्तान में अश्वक वीरों के साथ भारतीय वीर कहाँ से आ गये? यह शंका हो सकती है, किन्तु पाठकगण वे निमन्त्रित होकर उनकी रक्षा के लिये सुदूर से आये हैं, जो कि संख्या में केवल सात हजार होने पर भी ग्रीकों की असंख्य सेना को बराबर पराजित कर रहे हैं।

सिकंदर को उस सामान्य दुर्ग के अवरोध में तीन दिन व्यतीत हो गये। विजय की सम्भावना नहीं है, सिकंदर उदास होकरकैम्प में लौट गया और सोचने लगा। सोचने की बात ही है। राजा और परसिपोलिस आदि के विजेता को अफगानिस्तान के एक छोटे से दुर्ग के जीतने में इतना परिश्रम उठाकर भी सफलता मिलती नहीं दिखाई देती, उलटे कई बार उसे अपमानित होना पड़ा।

बैठे-बैठे सिकंदर को बहुत देर हो गयी। अन्धकार फैलकर संसार को छिपाने लगा, जैसे कोई कपटाचारी अपनी मन्त्रणा को छिपाता हो। केवल कभी-कभी दी-एक उल्लू उस भीषण रणभूमि में अपने भयावह शब्द को सुना देते हैं। सिकंदर ने सीटी देकर कुछ इंगित किया, एक वीर पुरुष सामने दिखाई पड़ा। सिकंदर ने उससे कुछ गुप्त बातें कीं, और वह चला गया। अन्धकार घनीभूत हो जाने पर सिकंदर भी उसी ओर उठकर चला, जिधर वह पहला सैनिक जा चुका था।

2

दुर्ग के उस भाग में, जो टूट चुका था, बहुत शीघ्रता से काम लगा हुआ था, जो बहुत शीघ्र कल की लड़ाई के लिये प्रस्तुत कर दिया गया और सब लोग विश्राम करने के लिये चले गये। केवल एक मनुष्य उसी स्थान पर प्रकाश डालकर कुछ देख रहा है। वह मनुष्य कभी तो खड़ा रहता है और कभी अपनी प्रकाश फैलानेवाली मशाल को लिये हुए दूसरी ओर चला जाता है। उस समय उस घोर अन्धकार में उस भयावह दुर्ग की प्रकाण्ड छाया और भी स्पष्ट हो जाती है। उसी छाया में छिपा हुआ सिकंदर खड़ा है। उसके हाथ में धनुष और बाण है, उसके सब अस्त उसके पास हैं। उसका मुख यदि कोई इस समय प्रकाश में देखता, तो अवश्य कहता कि यह कोई बड़ी भयानक बात सोच रहा है, क्योंकि उसका सुन्दर मुखमण्डल इस समय विचित्र भावों से भरा है।

अकस्मात् उसके मुख से एक प्रसन्नता का चीत्कार निकल पड़ा, जिसे उसने बहुत व्यग्र होकर छिपाया। समीप की झाड़ी से एक दूसरा मनुष्य निकल पड़ा, जिसने आकर सिकंदर से कहा- देर न कीजिये, क्योंकि यह वही है।

सिकंदर ने धनुष को ठीक करके एक विषमय बाण उस पर छोड़ा और उसे उसी दुर्ग पर टहलते हुए मनुष्य की ओर लक्ष्य करके छोड़ा। लक्ष्य ठीक था, वह मनुष्य लुढ़ककर नीचे आ रहा। सिकंदर और उसके साथी ने झट जाकर उसे उठा लिया, किन्तु उसके चीत्कार से दुर्ग पर का एक प्रहरी झुककर देखने लगा। उसने प्रकाश डालकर पूछा- कौन है?

उत्तर मिला- मैं दुर्ग से नीचे गिर पड़ा हूँ।

प्रहरी ने कहा- घबड़ाइये मत, मैं डोरी लटकाता हूँ। डोरी बहुत जल्द लटका दी गयी, अफगान वेशधारी सिकंदर उसके सहारे ऊपर चढ़ गया। ऊपर जाकर सिकंदर ने उस प्रहरी को भी नीचे गिरा दिया, जिसे उसके साथी ने मार डाला और उसका वेश आप लेकर उस सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया। जाने के पहले उसने अपनी छोटी-सी सेना को भी उसी जगह बुला लिया और धीरे-धीरे उसी रस्सी की सीढ़ी से वे सब ऊपर पहुँचा दिये।

3

दुर्ग के प्रकोष्ठ में सरदार की सुन्दर पत्नी बैठी हुई है। मदिरा-विलोल दृष्टि से कभी दर्पण में अपना सुन्दर मुख और कभी अपने नवीन नील वसन को देख रही है। उसका मुख लालसा की मदिरा से चमक चमक कर उसकी ही आँखों में

चकाचौंध पैदा कर रहा है। अकस्मात् 'प्यारे सरदार, कहकर वह चौंक पड़ी, पर उसकी प्रसन्नता उसी क्षण बदल गयी, जब उसने सरदार के वेश में दूसरे को देखा। सिकंदर का मानुषिक सौन्दर्य कुछ कम नहीं था, अबला-हृदय को और भी दुर्बल बना देने के लिये वह पर्याप्त था। वे एक-दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। पर अफगान-रमणी की शिथिलता देर तक न रही, उसने हृदय के सारे बल को एकत्र करके पूछा- तुम कौन हो? उत्तर मिला शाहंशाह सिकंदर रमणी ने पूछा- यह वस्त्र किस तरह मिला?

सिकंदर ने कहा- सरदार को मार डालने से। रमणी के मुख से चीत्कार के साथ ही निकल पड़ा क्या सरदार मारा गया?

सिकंदर- हाँ, अब वह इस लोक में नहीं है। रमणी ने अपना मुख दोनों हाथों से ढक लिया, पर उसी क्षण उसके हाथ में एक चमकता हुआ छुरा दिखाई देने लगा।

सिकंदर घुटने के बल बैठ गया और बोला-सुन्दरी! एक जीव के लिये तुम्हारी दी तलवारें बहुत थीं, फिर तीसरी की क्या आवश्यकता है?

रमणी की दृढ़ता हट गयी और न जाने क्यों उसके हाथ का छुरा छटककर गिर पड़ा, वह भी घुटनों के बल बैठ गयी। सिकंदर ने उसका हाथ पकड़कर उठाया। अब उसने देखा कि सिकंदर अकेला नहीं है, उसके बहुत से सैनिक दुर्ग पर दिखाई दे रहे हैं। रमणी ने अपना हृदय दृढ़ किया और संदूक खोलकर एक जवाहिरात का डिब्बा ले आकर

सिकंदर के आगे रक्खा सिकंदर ने उसे देखकर कहा- मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, दुर्ग पर मेरा अधिकार हो गया, इतना ही बहुत है।

दुर्ग के सिपाही यह देखकर कि शत्रु भीतर आ गया है, अस्त्र लेकर मारपीट करने पर तैयार हो गये। पर सरदार पत्नी ने उन्हें मना किया, क्योंकि उसे बतला दिया गया था कि सिकंदर की विजयवाहिनी दुर्ग के द्वार पर खड़ी है।

सिकंदर ने कहा-तुम घबड़ाओ मत, जिस तरह से तुम्हारी इच्छा होगी, उसी प्रकार सन्धि के नियम बनाये जायेंगे। अच्छा, मैं जाता हूँ। अब सिकंदर को थोड़ी दूर तक सरदार पत्नी पहुँचा गयी। सिकंदर थोड़ी सेना छोड़कर आप अपने शिविर में चला गया।

4

सन्धि हो गयी। सरदार पत्नी ने स्वीकार कर लिया कि दुर्ग सिकंदर के अधीन होगा। सिकंदर ने भी उसी को यहाँ की रानी बनाया और कहा- भारतीय योद्धा जो तुम्हारे यहाँ आये हैं, वे अपने देश को लौटकर चले जायँ। मैं उनके जाने में किसी प्रकार की बाधा न डालूँगा। सब बातें शपथपूर्वक स्वीकार कर ली गयीं।

राजपूत वीर अपने परिवार के साथ उस दुर्ग से निकल पड़े, स्वदेश की ओर चलने के लिए तैयार हुए। दुर्ग के समीप ही एक पहाड़ी पर उन्होंने अपना डेरा जमाया और भोजन करने का प्रबन्ध करने लगे।

भारतीय रमणियाँ जब अपने प्यारे पुत्रों और पतियों के लिये भोजन प्रस्तुत कर रहीं थीं, तो उनमें उस अफगान रमणी के बारे में बहुत बातें हो रही थीं, और वे सब उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगीं, क्योंकि उसने एक पति हत्याकारी को आत्म-समर्पण कर दिया था। भोजन के उपरान्त जब सब सैनिक विराम करने लगे तब युद्ध की बातें कहकर अपने चित्त को प्रसन्न करने लगे। थोड़ी देर नहीं बीती थी कि एक ग्रीक अश्वारोही उनके समीप आता दिखाई पड़ा, जिसे देखकर एक राजपूत युवक उठ खड़ा हुआ और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

ग्रीक सैनिक उसके समीप आकर बोला-शाहंशाह सिकंदर ने तुम लोगों को दया करके अपनी सेना में भरती करने का विचार किया है। आशा है कि इस सम्वाद से तुम लोग बहुत प्रसन्न होगे।

युवक बोल उठा- इस दया के लिये हम लोग कृतज्ञ हैं, पर अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ देने के लिए हम लोग कभी प्रस्तुत नहीं हैं। ग्रीक तुम्हें प्रस्तुत होना चाहिये, क्योंकि शाहंशाह सिकंदर की आज्ञा है।

युवक नहीं महाशय, क्षमा कीजिये। हम लोग आशा करते हैं कि सन्धि के अनुसार हम लोग अपने देश को शान्तिपूर्वक लौट जायेंगे, इसमें बाधा न डाली जायगी।

ग्रीक क्या तुम लोग इस बात पर दृढ़ हो? एक बार और विचार कर उत्तर दी, क्योंकि उसी उत्तर पर तुम लोगों का जीवन मरण निर्भर होगा।

इस पर कुछ राजपूतों ने समवेत स्वर से कहा- हाँ हाँ, हम अपनी बात पर दृढ़ हैं, किन्तु सिकंदर, जिसने देवताओं के नाम से शपथ ली है, अपनी शपथ को न भूलेगा।

ग्रीक-सिकंदर ऐसा मूर्ख नहीं है कि आये हुए शत्रुओं को और दृढ़ होने का अवकाश दे। अस्तु अब तुम लोग मरने के लिए तैयार हो।

इतना कहकर वह ग्रीक अपने घोड़े को घुमाकर सीटी बजाने लगा, जिसे सुनकर अगणित ग्रीक-सेना उन थोड़े से हिन्दुओं पर टूट पड़ी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने प्राण-प्रण से युद्ध किया और जब तक कि उनमें एक भी बचा बराबर लड़ता गया। क्यों न हो, जब उनकी प्यारी स्त्रियाँ उन्हें अस्त्रहीन देखकर तलवार देती थीं और हँसती हुई अपने प्यारे पतियों की युद्ध क्रिया देखती थीं। रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रहीं, जीवन देकर अपना धर्म रखा ग्रीकों की तलवारों ने उनके बच्चों को भी रोने न दिया, क्योंकि पिशाच सैनिकों के हाथ सभी मारे गये।

अज्ञात स्थान में निराश्रय होकर उन सब वीरों ने प्राण दिये। भारतीय लोग उनका नाम भी नहीं जानते!

~@~

2. एक गौ

लेखक:- जैनेन्द्र कुमार

लेखक परिचय:-

जैनेन्द्र कुमार जी का जन्म 2 जनवरी, 1905 ई. में कौड़ियारगंज जिला अलीगढ़ में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हस्तिनापुर तथा उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। आपको गिरफ्तार करके जेल भी भेजा गया। निधन 24 दिसम्बर, 1988 ई में हुई।

उपन्यास तथा कहानी दोनों क्षेत्रों में आपको ख्याति मिलती हैं। परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत आदि आपके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। कहानी के क्षेत्र में भी आपका प्रचुर योगदान है। फाँसी, वातायन, दी चिड़ियाँ, पाजेब, जयसन्धि कई कहानी संकलन प्रकाश में आ चुके हैं। आपकी कहानियों में प्रेम, वात्सल्य, क्रान्ति, राष्ट्रीयता, दर्शन आदि की अभिव्यक्ति हुई है।

हिसार और उसके आसपास के हिस्से को हरियाणा कहते हैं। यहाँ के लोग खूब तगडे होते हैं गाय-बैल और भी तन्दुरुस्त और कद्दावर होते हैं। यहाँ की नस्ल मशहूर है।

उसी हरियाणा के एक गाँव में एक जमींदार रहता था। दो पुस्त पहले उसके घराने की हालात थी। घी-दूध, बाल-बच्चे थे, मान प्रतिष्ठा थी। पर धीरे-धीरे अवस्था बिगड़ गई। आज हीरासिंह को यह समझ नहीं आता है कि अपनी बीवी

दो बच्चे, खुद और अपनी सुन्दरिया गाय की परवरिश कैसे करें।

राज की अमलदारी बदल गई है और लोगों की निगाहें भी फिर गई है। शहर बड़े से और बड़े हो गए हैं और वहाँ ऐसी ऊँची-ऊँची हवेलियों खड़ी हो जाती है कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता। कल-कारखाने और पुतलीघर खड़े हो गए हैं। बाइसिकलें और मोटरें आ गई है। इनसे जिन्दगी तेज पड़ गई है और बाजार में महँगाई आ गई है। इधर गाँव उजाड़ हो गए हैं और खुशहाली की जगह बेचारगी फैल रही है। हरियाणा के बैल खूबसूरत तो अब भी मालूम होते हैं और उन्हें देखकर खुशी भी होती है, लेकिन अब उनकी उतनी माँग नहीं है। चुनाँचे हीरासिंह भी अपने बाप-दादाओं के समान जरूरी आदमी अब नहीं रह गया है। हीरासिंह को बहुत-सी बातें बहुत कम समझ में आती है। यह आँखें फाड़कर देखना चाहता है, यह क्या बात है कि उसके घराने का महत्व इतना कम रह गया है। अन्त में उसने सोचा कि यह भाग्य है, नहीं हो और क्या?

उसकी गाय सुन्दरिया, डीलडौल में इतनी बड़ी और इतनी तन्दुरुस्त थी कि लोगों को ईर्ष्या होती थी। उसी सुन्दरिया को अब हीरासिंह ठीक-ठीक खाना नहीं जुटा पाता था। इस गाय पर उसे गर्व था। बहुत ही मुहब्बत से उसे उसने पाला था। नन्ही बछिया थी। तब से वह हीरासिंह के यहाँ थी। हीरासिंह को अपनी गरीबी का अपने लिए इतना दुख नहीं था। जितना उस गाय के लिए। जब उसके भी खाने

पीने में तोड़ आने लगी तो हीरासिंह के मन को बड़ी विधा हुई। क्या वह आको बेच दे? इसी गाँव के पटवारी ने दी सौ रूपए उस गाय के लगा दिये थे। दो सौ रूपए थोड़े नहीं होते। लेकिन अब तो सुन्दरिया को बेचे कैसे? इसमें उसकी आत्मा दुखती थी। फिर इसी गाँव में सुन्दरिया दूसरे के यहाँ बंधी रहे और हीरासिंह अपने बाप-दादों के घर बैठा टुकुर-टुकुर देखा करे, यह हीरासिंह से कैसे सहा जाएगा।

उसका बड़ा लडका जवाहर सिंह बड़ा तगड़ा जवान था। उन्नीस वर्ष की उम्र थी, मसं भीगी थी, पर इस उम्र में अपने से ड्योढ़े को कुछ नहीं समझता था। सुन्दरिया गाय को मौसी कहा करता था। उसे मानता भी उतना ही था। हीरासिंह के मन में दुर्दिन देखकर कभी गाय को बेचने की बात उठती थी, तो जवाहर सिंह के डर से रह जाता था। ऐसा हुआ तो जवाहर डंडा उठाकर रार मोल लेकर, उसकी फिर वहाँ से खोलकर नहीं ले जाएगा, इसका भरोसा हीरासिंह को नहीं था। जवाहर सिंह उजड्ड ही तो है। सुन्दरिया के मामले में भला वह किसी को सुननेवाला है। ऐसे नाहक रार के बीज बढ जाँँगे, और क्या?

पर दुर्भाग्य भी सिर पर से टलता न था। पैसे-पैसे को तंगी होने लगी थी। तो सब भुगत लिया जाए पर अपने आश्रितजनों को भूख भुगती जाए?

एक दिन जवाहर सिंह को बुलाकर कहा,- "मैं दिल्ली जाता हूँ। वहाँ बड़ी-बड़ी कोटियाँ है, बड़े बड़े लोग हैं। हमारे गाँव के कितने ही आदमी वहाँ रहते हैं। सो कोई नौकरी

मिल ही जाएगी। नहीं तो तुम्हीं सोचो, ऐसे कैसे काम चलेगा? तुम यहाँ देखभील रखना। वहाँ ठीक होने पर तुम सबको बुला लूँगा"।

दिल्ली जाकर एक सेठ के यहाँ चौकीदार की नौकरी उसे मिल गई। हवेली के बाहर ड्योढी में एक कोठरी रहने को भी मिल गई।

एक रोज सेठ ने हीरासिंह से कहा, "तुम तो हरियाणा की तरफ के रहने वाले हो न! वहाँ की गाँ बड़ी अच्छी होती हैं। हमें दूध की तकलीफ है, उधर की एक गाय का बन्दोबस्त हमारे लिए करके दी।"

हीरासिंह ने पूछा, "कितने दूध की और कितनी कीमत की चाहिए?"

सेठ ने कहा, "कीमत जो मुनासिब हो, देंगे, पर दूध थन के नीचे खूब होना चाहिए। गाय खूब सुन्दर व तगड़ी होनी चाहिए।"

हीरासिंह सुन्दरिया की बात सोचने लगा। उसने कहा, "एक है तो मेरी निगाह में, पर उसका मालिक बेचे तब है।"

सेठ ने कहा, "कैसी गाय है।"

हीरासिंह ने कहा, "गौ तो ऐसी है कि माँ समान और दूध देने में कामधेनु। पन्द्रह सैर दूध उसके तले उतरता है।"

सेठ ने पूछा "तो उसका मालिक किसी शर्त पर नहीं बेच सकता?"

हीरासिंह "उसके दो सौ रूपए लग गए हैं।"

सेठ, "दो सौ! चलो पाँच हम और ज्यादा देंगे।"

पाँच रुपए और ज्यादा की बात सुनकर हीरासिंह को दुख हुआ। वह कुछ शरम से और कुछ ताने में मुसकराया भी।

सेठ ने कहा, "ऐसी भी क्या बात है? दी-चार रुपए और बढ़ती दे देंगे। बस।"

हीरासिंह ने कहा, "अच्छी बात है, मैं कहूँगा।"

हीरासिंह को इस घड़ी दुख बहुत हो रहा था। एक तो इसलिए कि वह जानता था कि गाय बेचने के लिए यह राजी होता जा रहा है। दूसरे, दुख इसलिए भी हुआ कि उसने सेठ से सच्ची बात नहीं कही।

सेठ ने कहा, "देखो, गाय अच्छी है और उसके तले पन्द्रह सेर दूध पक्का है, तो पाँच-दस रुपए के पीछे बात कच्ची मत करना।"

हीरासिंह ने तब लज्जा से कहा, "जी, सच्ची बात यह है कि गाय वह अपनी ही है।"

सेठजी ने खुश होकर कहा, "तब तो फिर ठीक बात है, तुम तो अपने आदमी ठहरे। तुम्हारे लिए जैसे दो सौ वैसे ही पाँच, गाय कब ले आओगे? मेरी राय में आज ही चले जाओ।"

हीरासिंह शरम के मारे कुछ न बोल सका। उसने सोचा था कि गौ आखिर बेचनी तो होगी ही। अच्छा है कि वह गाँव से दूर कहीं ऐसी जगह रहे। रुपए पाँच कम, पाँच ज्यादा -यह कोई ऐसी बात नहीं, पर गाँव के पटवारी के यहाँ तो सुन्दरिया उससे दी ही न जाएगी। उसने सेठ के जवाब में कहा, "जो हुक्म, मैं आज हो चला जाता हूँ, लेकिन एक बात

है- मेरा लड़का जवाहर राजी हो जाए तब है। वह लड़का अक्खड है और गाय को प्यार भी करता है।"

सेठ ने समझा, यह कुछ और पैसे पाने का बहाना है। बोला, "अच्छा, दो सौ पाँच ले लेना। चलो, दो सौ सात ही सही। पर गाय लाओ तो। दूध पन्द्रह मेर पक्के को शर्त है।

हीरासिंह लाज से गडा जाने लगा। वह कैसे बताए कि रूपए की बात बिलकुल नहीं है। तिस पर ये सेठ तो उसके अन्नदाता है। फिर ये ऐसी बातें करते हैं? उसे जवाहर की तरफ से सचमुच शंका थी। लेकिन इन गरीबी के दिनों में गाय दिन-पर-दिन एक समस्या होती जाती थी। उसकी रखना भारी पड़ रहा था। पर अपने तन क्या काटा जाता है? काटते कितनी वेदना होती है। यही हीरासिंह का हाल था। सुन्दरिया क्या केवल एक गौ थी? वह तो गौ 'माता' थी- उसके परिवार का अंग थी। उसी को रूपए के मोल बेचना आसान काम न था।

पर हीरासिंह को यह ढाढस था कि सेठ के यहाँ रहकर गौ उसकी आँखों के आगे तो रहेगी। सेवा-टहल भी यहाँ वह गौ की कर लिया करेगा। उसकी टहल करके यहाँ उसके चित्त को कुछ तो सुख रहेगा। तब उसने सेठ से कहा, "रूपए की बात बिलकुल नहीं है, सेठजी! वह लड़का जवाहर ऐसा ही है, पूरा बेबस जीव है। खैर, आप कहें तो आज मैं जाता हूँ। उसे समझा-बुझा सका तो गौ को लेता ही आऊँगा। उसका नाम हमने "सुन्दरिया" रखा है।"

"हाँ, लेते आना। पर पन्द्रह सेर की बात हैं न? इत्मीनान हो जाए तब सौदा पक्का रहेगा कुछ रुपए चाहिए तो ले जाओ।"

हीरासिंह बहुत ही लज्जित हुआ। उसकी गौ के बारे में बे-ऐतवारी उसे अच्छी नहीं लगती थी। उसने कहा, -"जी, रुपए कहाँ जाते हैं, फिर मिल जाएँगे। पर यह कहे देता हूँ कि वह एक ही है। मुकाबले की दूसरी मिल जाए तो मुझे जो चाहो कहना।"

सेठजों ने स्नेहभाव में दो सौ रुपए माँगकर उसी वक्त हीरासिंह को थमा दिये और कहा, "देखो हीरासिंह आज ही चले जाओ और गाय कब तक आ जाएगी? परसो तक।"

हीरासिंह ने कहा, "यहाँ से पचास कोस गाँव है तीन रोज तो आने-जाने में लग जाएँगे।"

सेठजी ने कहा, "पचास कोस? - तीस कोस की मंजिल एक दिन में की जाती है, तुम मुझको क्या समझते हो? तीस कोस की मंजिल सेठ पैदल एक दिन छोड तीन दिन में भी कर लें तो हीरासिंह जाने।" लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

सेठ ने कहा, "अच्छा, तो चौथे दिन गाय यहाँ आ जाए।" हीरासिंह ने कहा, "जी, कम-से-कम पाँच रोज तो लगेंगे ही।"

सेठ ने कहा, "पाँच"

हीरासिंह ने विनीत भाव से कहा, "दूर जगह है, सेठजी।"

सेठ ने कहा, "अच्छी बात है। देर मत लगाना, यहाँ काम का हर्ज होगा, जानते हो। खैर, इन दिनों तुम्हारी तनख्वाह न काटने को कह देंगे।"

हीरासिंह ने जवाब में कुछ नहीं कहा और वह उसी रोज चला भी गया।

ज्यों-त्यों जवाहरसिंह को समझा-बुझाकर गाय वह आया। देखकर सेठ बड़े खुश हुए। सचमुच वैसी सुन्दर स्वस्थ गौ, उन्होंने अब तक न देखी थी। हीरासिंह ने खुद उसे सानी-पानी किया, सहलाया और अपने हाथों से उसे दुहा। दूध पन्द्रह सेर से कुछ ऊपर ही बैठा। सेठजी ने दी सौ के ऊपर सात रूपए होरा को दिये और अपने घोसी को बुलाकर गौ उसके सिपुर्द की।

रुपए तो लिये लेकिन हीरासिंह का जी भरा आ रहा था। जब सेठजी का घोसी गाय को ले जाने लगा, तब गाय उसके साथ चलना ही नहीं चाहती थी। घोसी ने झल्लाकर उसे मारने को रस्सी भी उठाई, लेकिन सेठजी ने मना कर दिया। वह गौ इतनी भोली मालूम होती थी कि सचमुच घोसी का हाथ भी उसे मारने की हिम्मत से ही उठ सका था। अब जब वह हाथ इस भाँति उठ करके भी रुका रह गया तब घोसी को खुशी हुई क्योंकि गौ की आँखों के कोने में गाढ़े-गाढ़े आँसू भर रहे थे। वे आँसू धीमे-धीमे बहने भी लगे।

हीरासिंह ने कहा, "सेठजी, इस गौ की नौकरी पर मुझे कर दीजिए, चाहे तनख्वाह में दी रूपए कम कर दीजिएगा।"

सेठजी ने कहा, "हीरासिंह, तुम्हारे जैसा ईमानदार चौकीदार हमें दूसरा कौन मिलेगा? तनख्वाह तो हम तुम्हारी एक रुपया और बड़ा सकते हैं, पर तुमको ड्योढ़ी पर ही रहना होगा।"

उस समय हीरासिंह को बहुत दुख हुआ। यह दुख इस बात से और दुःसह हो गया कि सेठ का विश्वास उस पर है। वह गौ को सम्बोधन करके बोला, "जाओ बहिनी, जाओ।"

गौ ने सुनकर मुँह जरा ऊपर उठाकर हीरासिंह की तरफ देखा, मानो पूछती हो, "जाऊँ ? तुम कहते हो, जाऊँ?"

हीरासिंह उसके पास आ गया। उसने गले पर थपथपाया, माथे पर हाथ फेरा, गलबन्ध सहलाया और काँपती वाणी में कहा, "जाओ बहिनी सुन्दरिया, जाओ। मैं कहीं दूर थोड़े ही हूँ। मैं तो यहाँ ही हूँ।"

हीरासिंह के आशीर्वाद में भीगती हुई गौ चुप खड़ी थी। जाने की बात पर जरा मुँह ऊपर उठाया और भरी आँखों से उसे देखती हुई मानो पूछने लगी, "जाऊँ? तुम कहते हो, जाऊँ? "

हीरासिंह ने थपथपाते हुए पुकारकर कहा, "जाओ बहिनी सोच ना करो।" फिर घोसी को आश्वासन देकर कहा, "लो, अब ले जाओ, अब चली जाएगी।" यह कहकर हीरासिंह ने गाय के गले की रस्सी अपने हाथों उस घोसी को थमा दी। गाय फिर चुपचाप डग-डग उसी के पीछे-पीछे चली गई।

हीरासिंह एकटक देखता रहा। उसने आँसू नहीं आने दिये। हाथ के नोटों को वह जोर से पकड़े रहा। नोट पर वह मुट्टी इतनी जोर से कस गई कि अगर उन नोटों में जान होती तो बेचारे रो उठते। वे कुचले-कुचलाए मुट्टी में बँधे रह गए।

उसके बाद सेठजी वहाँ से चले गए और हीरासिंह भी चलकर अपनी कोठरी में आ गया। कुछ देर वह उस हवेली

की ड्योढ़ी के बाहर शून्य भाव में देखता रहा। भीतर हवेली थी, यह तुम्हारे है। बाहर बिछा शहर था, उसके पार खुला मैदान और खुली हवा थी और उनके बीच में आने-जाने का रास्ता छोड़े हुए फिर भी उस रास्ते को रोके हुए यह ड्योढ़ी थी। कुछ देर तो उसे देखता रहा, फिर मुँह झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। अनबूझ भाव वह इस व्याप्त विस्तृत शून्य में देखता रह गया।

लेकिन अगले दिन गड़बड़ उपस्थित हुई। सेठजी ने हीरासिंह को बुलाकर कहा, "यह तुम मुझे धोखा तो नहीं देना चाहते? गाय के नीचे सवेरे पाँच सेर भो तो दूध नहीं उतरा। शाम को भी यही हाल रहा। मेरी आँखों में तुम धूल झोंकना चाहते हो।

हीरासिंह ने बड़ी कठिनाई से कहा, "मैंने तो पन्द्रह सेर ऊपर दुहकर आपके सामने दे दिया।

"दे दिया होगा। लेकिन अब क्या बात हो गई? तुमने उसे कोई दवा तो नहीं खिला दी है?"

हीरासिंह का जी दुख और ग्लानि से कठिन हो आया। उसने कहा, "दवा मैंने नहीं खिलाई और कोई दवा दूध ज्यादा नहीं निकलवा सकती। इसके आगे और मैं कुछ नहीं जानता।"

सेठजी ने कहा, "तो जाकर अपनी गाय को देखो। अगर दूध नहीं देती, तो मुझे मुफ्त का जुरमाना भुगतना है।"

हीरासिंह गाय के पास गया। वह उसकी गरदन से लगकर खड़ा हो गया। उसने गाय को चूमा, फिर कहा,

"सुन्दरिया, तू रुसवाई क्यों कराती है? तेरे बारे में किसी से धोखा करूंगा?"

गाय ने उसी भाँति मुँह ऊपर उठाया, मानो पूछा- मुझे कहते हो? बोलो, मुझे क्या कहते हो?

हीरासिंह ने घोसी से कहा, "बंटा लाओ तो!"

घोसी ने कहा, "मैं आध घंटा पहले दुह चुका हूँ।"

हीरासिंह ने कहा, "तुम बंटा लाओ।"

उसके बाद साढ़े तेरह सेर दूध उसके तले से पक्का तौलकर हीरासिंह ने घोसी को दे दिया। कहा, "यह दूध सेठजी को दे दो।" फिर गौ के गले पर अपना सिर डालकर हीरासिंह बोला, "सुन्दरी! देख, मेरी ओछी मत कर। तू यहाँ है, मैं दूर हूँ तो क्या उसमें मुझे सुख है?"

गौ मुँह झुकाकर वैसी खड़ी रही। "देखना सुन्दरिया! मेरी रुसवाई न करना।" गदगद कंठ से यह कहकर उसे थपथपाते हुए, हीरासिंह चला गया।

पर गौ अपनी विथा किससे कहे? कह नहीं पाती, इसी से सही नहीं जाती। क्या वह हीरासिंह को रुसवाई चाहती है? उसे सह सकती है? लेकिन दूध नीचे आता ही नहीं, तब क्या करें? वह तो चढ़-चढ़ जाता है, सूख-सूख जाता है, गौ बेचारी करे तो क्या?

सो फिर शिकायत हो चली। आए दिन बखेड़े खड़े होने लगे। शाम इतना दूध दिया, सवेरे उससे भी कम दिया। कल तो चढ़ा ही गई थी। इतने उनहार-मुनहार किए, बस में ही न आई। गाय है कि बवाल है। जी को एक सामत ही पाल ली।

सेठ ने कहा, "क्या हीरासिंह, यह क्या है?".

हीरासिंह ने कहा, "मैं क्या जानता हूँ।"

सेठ ने कहा, "क्या यह सरासर धोखा नहीं है?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठ ने कहा, "ऐसा ही है तो ले जाओ अपनी गाय और रुपए मेरे वापस करो।"

लेकिन रुपए हीरासिंह गाँव भेज चुका था और उसमें से काफ़ी रकम वहाँ के मकान की मरम्मत में काम आ चुकी थी। हीरासिंह फिर चुप रह गया।

सेठजी ने कहा, "क्या कहते हो?"

हीरासिंह क्या कहे ?

सेठजी ने कहा, "अच्छा, तनख्वाह में से रकम कटती जाएगी और जब पूरी हो जाएगी, तो गाव अपनी ले जाना।"

हीरासिंह ने सुन लिया और सुनकर वह अपनी ड्योढ़ी में आ गया। उस ड्योढ़ी के इधर हवेली है, उधर शहर बिछा है, जिसके पास खुला मैदान है और खुली हवा है। दोनों ओर कुछ देर शून्य-भाव से देखकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

अगले दिन सवेरे से ही एक प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रकार की आलोचना-विवेचना का विषय बना हुआ था। बात यह थी कि सवेरे बहुत-सा दूध ड्योढ़ी में बिखरा हुआ पाया गया। उससे पहले शाम को सुन्दरी गाय ने दूध देने से बिलकुल इनकार कर दिया था। उसे बहलाया गया, फुसलाया गया, धमकाया और पीटा भी गया था, फिर भी वह राह पर न आई थी। अब

यह इतना सारा दूध यहाँ कैसे बिखरा है? यह यहाँ आया तो कहाँ से आया?

लोगों का अनुमान था कि कोई दूध लेकर ड्योढ़ी में आया था, या ड्योढ़ी में जा रहा था, उसके हाथ से यह बिखर गया है? अब वह दूध लेकर आने वाला आदमी कौन हो सकता है? लोगों का गुमान यह था कि हीरासिंह ही वह व्यक्ति हो सकता है। हीरासिंह चुपचाप था। वह लज्जित और सचमुच अभियुक्त मालूम होता था। हीरासिंह के दोषी होने का अनुमान या कारण यह भी था कि हवेली के और नौकर उससे प्रसन्न न थे। वह नौकर के ढंग का नौकर ही न था। नौकरी से आगे बढ़कर स्वामिभक्ति का भी उसे चाव था, जो कि नौकरी के लिए असहा दुर्गुण नहीं तो और क्या है?

सेठजी ने पूछा, "हीरासिंह, यह क्या बात है?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठजी ने कहा, "इसका पता लगाओ हीरासिंह, नहीं तो अच्छा न होगा।"

हीरासिंह सिर झुकाकर रह गया, पर कुछ ही देर में उसने सहसा चमत्कृत होकर पूछा, "रात गाय खुली तो नहीं रह गई थी? जरूर यही बात है। आप इसकी खबर तो लीजिए।"

घोसी को बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि ऐसी चूक कभी उसके जनम जीते-जी हो ही नहीं सकती है और कल रात तो हुजूर, पक्के दावे के साथ गाय ठीक तरह से बँधी रही है।

हीरासिंह ने कहा, "ऐसा हो ही नहीं सकता।"

सेठजी ने कहा, "तो फिर तुम्हारी समझ में क्या हो सकता है ? "

हीरासिंह ने स्थिर होकर कहा, "गाय रात को आकर ड्योढ़ी में खड़ी रही और अपना दूध गिरा गई।"

यह कहकर हीरासिंह इतना लीन हो रहा था कि मानो गौ के इस दुष्कृत्य पर अतिशय कृतज्ञता में डूब गया हो।

सेठजी ऐसी अनहोनी बात पर कुछ देर भी नहीं ठहरे। उन्होंने कहा, "ऐसी मसनूई बातें और से कहना। जाओ, खबर लगाओ कि वह कौन आदमी है, जिसकी यह करतूत है ?"

हीरासिंह ड्योढ़ी में चला गया। ड्योढ़ी इस हवेली और उस दुनिया के दरमियान है, उसके लिए घर बनी हुई है। क्षणिक शून्य में देखते रहकर फिर सिर झुकाकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रात को जब वह सो रहा था, उसे मालूम हुआ कि दरवाजे पर कुछ रगड़ की आवाज आई उठकर दरवाजा खोला कि देखता क्या है, सुन्दरिया खड़ी है। इस गौ के भीतर इन दिनों बहुत विधा घुटकर रह गई थी। वह तकलीफ बाहर आना ही चाहती थी। हीरासिंह ने देखा, मुँह ऊपर उठाकर उसकी सुन्दरिया उसे अभियुक्त की आँखों से देख रही है, मानो अत्यन्त लज्जित बनी क्षमा याचना कर रही हो। कहती हो, 'मैं अपराधिनी हूँ लेकिन मुझे क्षमा कर देना। मैं बड़ी दुखियाँ हूँ।'

हीरासिंह ने कहा, "बहिनी, यह तुमने क्या किया ?"

कैसा आश्चर्य। देखता क्या है कि गौ मानव-वाणी में बोल रही है, "मैं क्या करूँ?"

हीरासिंह ने कहा, "बहन, तुम बेवफाई क्यों करती हो? सेठ को अपना दूध क्यों नहीं देती हो ? बहिनी ! वह अब तुम्हारे मालिक हैं।" कहते-कहते हीरासिंह की वाणी काँप गई, मानो कहीं भीतर इस मालिक होने की बात के सच होने में उसको खुद शंका हो।

सुन्दरीया ने पूछा, "मालिक ! मालिक क्या होता है ?"

हीरासिंह ने कहा, "तुम्हारी कीमत के रूपए सेठ ने मुझे दे दिये थे, ऐसे वह तुम्हारे मालिक हुए।"

गौ ने कहा, "ऐसे तुम्हारे यहाँ मालिक हुआ करते हैं, मैं इस बात को जानती नहीं हूँ। लेकिन तुम मुझे प्रेम करते हो, सो तुम मेरे क्या हो ?"

हीरासिंह ने धीर भाव से कहा, "मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ।"

गौ बोली, "तुम मेरे कुछ भी नहीं हो, यह तुम कहते हो? तुम झूठ भी नहीं कहते होगे तुम जानते हो, वह मैं नहीं जानती। लेकिन मालिक की बात के साथ दूध देने की बात मुझसे तुम कैसी करते हो? मालिक हैं, तो मैं उनके घर में उनके खूँटे से बँधी रहती तो हूँ। रात में भी चोरी कर आई हूँ, तो भी उनकी ड्योठी से बाहर नहीं हूँ। पर दूध तो मेरे उतरता ही नहीं, उसका क्या करूँ? मेरे भीतर का दूध मेरी पूरी तरह बस में नहीं है। कल रात आप-ही-आप इतना सारा दूध यहाँ बिखर गया। मैं यह सोचकर नहीं आई थी। हाँ, मुझे लगता है कि बिखरेगा तो वह यों ही बिखर जाएगा। तुम

ड्योढ़ी में रहोगे तो शायद ड्योढ़ी में बिखर जाएगा। ड्योढ़ी से पार चले जाओगे तो शायद भीतर-ही-भीतर सूख जाएगा। मैं जानती हूँ, इससे तुम्हें दुख पहुँचा है। मुझे भी दुख पहुँचता है। शायद यह ठीक बात नहीं हो। मेरा यहाँ तक आ जाना भी ठीक बात नहीं हो। लेकिन जितना मेरा बस है, मैं कह चुकी हूँ। तुमने रुपए लिये हैं और सेठ मेरे मालिक हैं, तो उनके घर में उनके खूँटे से मैं रह लूँगी। रह तो मैं रही ही हूँ। रुपए लेन-देन से अधिकार का और प्रेम का लेन-देन जिस भाव से तुम्हारी दुनिया में होता है, उसे मैं नहीं जानती। फिर भी तुम्हारी दुनिया में तुम्हारे नियम मानती जाऊँगी। लेकिन तुम अपने हृदय का इतना स्नेह देते हो, तब, तुम मेरे कुछ भी नहीं हो और अपने हृदय का दूध बिलकुल तुम्हारे प्रति नहीं वहा सकती-"यह बात मैं किस विध मान लूँ? मुझसे नहीं मानी जाती। सच, नहीं मानी जाती। फिर भी जो तुम कहोगे, वह मैं सब-कुछ मानूँगी।"

हीरासिंह ने विषाद-भरे स्वर में पूछा, "तो मैं तुम्हारा क्या हूँ?"

गौ ने कहा, "तो क्या मेरे, कहने की बात है। फिर शब्द में विशेष नहीं जानती। दुख है, वही मेरे पास है। उससे जो शब्द बन सकते हैं उन्हीं तक मेरी पहुँच है। आगे शब्दों में मेरी गति नहीं है, जो भाव मन में हैं, उनके लिए संज्ञा मेरे जुटाए जुटती नहीं। पशु जो मैं हूँ। संज्ञा तुम्हारे समाज की स्वीकृति के लिए जरूरी होती होगी, लेकिन मैं तुम्हारे समाज की नहीं हूँ। मैं निरी गौ हूँ। तब मैं कह सकती हूँ कि तुम मेरे कोई हो, कोई न हो, दूध मेरा किसी और के प्रति नहीं

बहेगा। इसमें मैं या तुम या कोई और शायद कुछ भी न कर सकेंगे। इस बात में मुझ पर मेरा भी बस कैसे चलेगा? तुम जानते हो, मैं कितनी परबस हूँ ?

हीरासिंह गौ के कंठ से लिपटकर सुबकने लगा, "सुन्दरिया, तो मैं क्या करूँ ?"

गौ ने कम्पित वाणी में कहा, "मैं क्या कहूँ? क्या न कहूँ ?"

हीरासिंह ने कहा, "जो कहो, मैं वही करूँगा सुन्दरी लेकिन रुपए का लेन-देन है, लेकिन मेरी गौ, मैंने जान लिया कि उससे आगे भी कुछ है। शायद उससे आगे ही सब-कुछ है। जो कहो, वही करूँगा, मेरी सुन्दरिया।"

गौ ने कहा, "जो तुमसे सुन रही हूँ, उससे आगे मेरी कुछ चाहना नहीं है। इतने में ही मेरी सारी कामनाएँ भर गई हैं। आगे तो तुम्हारी इच्छा है और मेरा तन है। मेरा विश्वास करो, मैं कुछ नहीं माँगती और मैं सब सह लूँगी।"

सुनकर हीरासिंह विहल हो आया। उसके आँसू रोके न रुके। वह गरदन से लिपटकर तरह-तरह के प्रेम सम्बोधन करने लगा। उसके बाद हीरासिंह ने बहुत-से आश्वासन के वचनों के साथ गौ को विदा किया।

अगले दिन सबेरे उसने सेठजी से कहा, "आप मुझसे जितने महीने की चाहे कसकर चाकरी लीजिए, पर गौ आज ही यहाँ से हमारे गाँव चली जाएगी। रुपए जब आपके चुकता हो जाएँ, मुझसे कह दीजिएगा तब मैं भी छुट्टी ले जाऊँगा।"

सेठजी की पहले तो राजी होने की तबीयत न हुई,
फिर उन्होंने कहा, "हाँ, ले जाओ, ले जाओ। पूरा-पूरा ढाई
सौ रुपए का तावान तुम्हें भरना पड़ेगा।

हीरासिंह तावान भरने को खुशी से राजी हुआ और गौ
को उसी रोज ले गया।

~@~

3. ठेस

लेखक: फणीश्वरनाथ रेणु

लेखक परिचय:-

फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले के औराही हिंगना गाँव में हुआ था। हिन्दी भाषा के साहित्यकार 'रेणु' जी का पहल उपन्यास 'मैला आंचल' को बहुत ख्याति मिली और इसके लिए उन्हें "पद्मश्री पुरस्कार" से सम्मानित किया गया।

'रेणु' जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में इन्टरमीडिएट किया और उसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणाम स्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। 'रेणु' जी की लेखन-शैली वर्णनात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया जाता था। पात्रों का चरित्र-निर्माण काफी तेजी से होता था क्योंकि पात्र एक सामान्य-सरल मानव मन (प्रायः) के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है।

रेणु जी ने ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया।

खेती-बारी के समय, गांव के किसान सिरचन की गिनती नहीं करते। लोग उसकी बेकार ही नहीं, बेगार समझते हैं। इसलिए, खेत-खलिहान की मजदूरी के लिए कोई नहीं बुलाने जाता है सिरचन को क्या होगा, उसकी बुला कर? दूसरे मजदूर खेत पहुंच कर एक तिहाई काम कर चुकेंगे, तब कहीं सिरचन राय हाथ में खुरपी डुलाता दिखाई पड़ेगा पगडंडी पर तौल तौल कर पांव रखता हुआ, धीरे-धीरे मुफ्त में मजदूरी देनी हो तो और बात है।

आज सिरचन को मुफ्तखोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई। एक समय था, जबकि उसकी मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियां बंधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे।

अरे... सिरचन भाई! अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गई है सारे इलाके में एक दिन भी समय निकाल कर चलो।

'कल बड़े भैया की चिट्ठी आई है शहर से सिरचन से एक जोड़ा चिक बनवा कर भेज दी।

मुझे याद है... मेरी माँ जब कभी सिरचन को बुलाने के लिए कहती, मैं पहले ही पूछ लेता, भोग क्या क्या लगेगा?'

माँ हँस कर कहती, जा-जा, बेचारा मेरे काम में पूजा-भोग की बात नहीं उठाता कभी।

ब्राह्मण टोली के पंचानंद चौधरी के छोटे लड़के को एक बार मेरे सामने ही बेपानी कर दिया था सिरचन ने, तुम्हारी भाभी नाखून से खांट कर तरकारी परोसती है। और

इमली का रस साल कर कढ़ी तो हम कहार-कुम्हारों की घरवाली बनाती हैं। तुम्हारी भाभी ने कहां से बनाई!

इसलिए सिरचन को बुलाने से पहले मैं माँ को पूछ लेता..

सिरचन को देखते ही माँ हुलस कर कहती, आओ सिरचना आज नेनू मथ रही थी, तो तुम्हारी याद आई। घी की डाड़ी (खखोरन) के साथ चूड़ा तुमको बहुत पसंद है न... और बड़ी बेटी ने ससुराल से संवाद भेजा है, उसकी ननद रूठी हुई है, मोथी के शीतलपाटी के लिए।

सिरचन अपनी पनियायी जीभ को संभाल कर हंसता, घी की सुगंध सूँघ कर आ रहा हूँ, काकी! नहीं तो इस शादी ब्याह के मौसम में दम मारने की भी छुट्टी कहां मिलती है?

सिरचन जाति का कारीगर है।

मैंने घंटों बैठ कर उसके काम करने के ढंग को देखा है। एक-एक मोथी और पटेर को हाथ में लेकर बड़े जातां से उसकी कुच्ची बनाता। फिर, कुच्चियों को रंगने से ले कर सुतली सुलझाने में पूरा दिन समाप्त... काम करते समय उसकी तन्मयता में जरा भी बाधा पड़ी कि गेंहुअन सांप की तरह फुफकार उठता, फिर किसी दूसरे से करवा लीजिए काम सिरचन मुँहजोर है, कामचोर नहीं। बिना मज़दूरी के पेट भर भात पर काम करनेवाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले, तो कोई बात नहीं, किंतु बात में ज़रा भी झाल वह नहीं बर्दाश्त कर सकता।

सिरचन को लोग चटोर भी समझते हैं... तली बघारी हुई तरकारी, दही की कढ़ी, मलाई वाला दूध, इन सब का

प्रबंध पहले कर लो, तब सिरचन को बुलाओ; दुम हिलाता हुआ हाज़िर हो जाएगा। खाने-पीने में चिकनाई की कमी हुई कि काम की सारी चिकनाई ख़त्मा काम अधूरा रख कर उठ खड़ा होगा, आज तो अब अधकपाली दर्द से माथा टनटना रहा है। थोड़ा-सा रह गया है, किसी दिन आ कर पूरा कर दूँगा... किसी दिन माने कभी नहीं!

मोथी घास और पटरे की रंगीन शीतलपाटी, बांस की तीलियों की झिलमिलाती चिक, सतरंगे डोर के मोढ़े, भूसी चुन्नी रखने के लिए मूँज की रस्सी के बड़े-बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी टोपी तथा इसी तरह के बहुत से काम हैं, जिन्हें सिरचन के सिवा गांव में और कोई नहीं जानता। यह दूसरी बात है कि अब गांव में ऐसे कामों को बेकाम का काम समझते हैं लोग बेकाम का काम, जिसकी मजदूरी में अनाज या पैसे देने की कोई ज़रूरत नहीं। पेट भर खिला दी, काम पूरा होने पर एकाध पुराना धुराना कपड़ा दे कर विदा करो। वह कुछ भी नहीं बोलेगा...

कुछ भी नहीं बोलेगा, ऐसी बात नहीं। सिरचन को बुलाने वाले जानते हैं, सिरचन बात करने में भी कारीगर है... महाजन टोले के भजू महाजन की बेटी सिरचन की बात सुन कर तिलमिला उठी थी ठहरो! मैं माँ से जा कर कहती हूँ। इतनी बड़ी बात!

बड़ी बात ही है बिटिया! बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दी-दी पटेर की पटियों का काम सिर्फ़ खेसारी का सत्तू खिला कर कोई करवाए भला? यह तुम्हारी

माँ ही कर सकती है बबुनी!' सिरचन ने मुस्कुरा कर जवाब दिया था।

उस बार मेरी सबसे छोटी बहन की विदाई होने वाली थी। पहली बार ससुराल जा रही थी मानू, मानू के दूल्हे ने पहले ही बड़ी भाभी को खत लिख कर चेतावनी दे दी है, मानू के साथ मिठाई की पतीली न आए, कोई बात नहीं। तीन जोड़ी फैशनेबल चिक और पटेर की दी शीतलपाटियों के बिना आएगी मानू तो...'

भाभी ने हंस कर कहा, बैरंग वापस!' इसलिए एक सप्ताह से पहले से ही सिरचन को बुला कर काम पर तैनात करवा दिया था माँ ने देख सिरचन! इस बार नई धोती दूंगी, असली मोहर छाप वाली धोती। मन लगा कर ऐसा काम करो कि देखने वाले देख कर देखते ही रह जाएं।'

पान जैसी पतली छुरी से बांस की तीलियों और कमानियों को चिकनाता हुआ सिरचन अपने काम में लग गया। रंगीन सुतलियों से झब्बे डाल कर वह चिक बुनने बैठा। डेढ़ हाथ की बिनाई देख कर ही लोग समझ गए कि इस बार एक दम नए फैशन की चीज़ बन रही है, जो पहले कभी नहीं बनी।

मंझली भाभी से नहीं रहा गया, परदे के आड़ से बोली, पहले ऐसा जानती कि मोहर छाप वाली धोती देने से ही अच्छी चीज़ बनती है तो भैया को खबर भेज देती। काम में व्यस्त सिरचन के कानों में बात पड़ गई। बोला, मोहर छापवाली धोती के साथ रेशमी कुरता देने पर भी ऐसी चीज़

नहीं बनती बहुरिया। मानू दीदी काकी की सबसे छोटी बेटी है.. मानू दीदी का दूल्हा अफ़सर आदमी है।'

मंझली भाभी का मुंह लटक गया। मेरे चाची ने फुसफुसा कर कहा, किससे बात करती है बहू? मोहर छाप वाली धोती नहीं, मूंगिया लड्डू बेटी की विदाई के समय रोज मिठाई जो खाने को मिलेगी। देखती है न।'

दूसरे दिन चिक की पहली पांति में सात तारे जगमगा उठे, सात रंग के। सतभैया तारा! सिरचन जब काम में मगन होता है। तो उसकी जीभ ज़रा बाहर निकल आती है, होंठ पर अपने काम में मगन सिरचन को खाने-पीने की सुध नहीं रहती। चिक में सुतली के फंदे डाल कर अपने पास पड़े सूप पर निगाह डाली- चिउरा और गुड़ का एक सूखा ढेला। मैंने लक्ष्य किया, सिरचन की नाक के पास दी रेखाएं उभर आईं। मैं दौड़ कर माँ के पास गया। 'माँ, आज सिरचन को कलेवा किसने दिया है, सिर्फ चिउरा और गुड़?'

माँ रसोईघर में अंदर पकवान आदि बनाने में व्यस्त थी। बोली, मैं अकेली कहाँ-कहाँ क्या-क्या देखूँ.. अरी मंझली, सिरचन को बुंदिया क्यों नहीं देती?"

बुंदिया मैं नहीं खाता, काकी! सिरचन के मुँह में चिउरा भरा हुआ था। गुड़ का ढेला सूप के किनारे पर पड़ा रहा, अछूता।

माँ की बोली सुनते ही मंझली भाभी की भौहें तन गईं। मुट्टी भर बुंदिया सूप में फेंक कर चली गई।

सिरचन ने पानी पी कर कहा, मंझली बहुरानी अपने मैके से आई हुई मिठाई भी इसी तरह हाथ खोल कर बांटती है क्या?'

बस, मंझली भाभी अपने कमरे में बैठकर रोने लगी। चाची ने माँ के पास जा कर लगाया, छोटी जाति के आदमी का मुंह भी छोटा होता है। मुंह लगाने से सर पर चढ़ेगा ही... किसी के नैहर ससुराल की बात क्यों करेगा वह?'

मंझली भाभी माँ की दुलारी बहू है। माँ तमक कर बाहर आई, सिरचन, तुम काम करने आए हो, अपना काम करो। बहुओं से बतकुट्टी करने की क्या ज़रूरत? जिस चीज़ की ज़रूरत हो, मुझसे कहो।'

सिरचन का मुँह लाल हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। बाँस में टँगे हुए अधूरे चिक में फंदे डालने लगा।

मानू पान सजा कर बाहर बैठकखाने में भेज रही थी। चुपके से पान का एक बीड़ा सिरचन को देती हुई बोली और इधर-उधर देख कर कहा, सिरचन दादा, काम-काज का घर! पांच तरह के लोग पांच किस्म की बात करेंगे। तुम किसी की बात पर कान मत दो।'

सिरचन ने मुस्कुरा कर पान का बीड़ा मुंह में ले लिया। चाची अपने कमरे से निकल रही थी। सिरचन को पान खाते देख कर अवाक हो गई। सिरचन ने चाची को अपनी ओर अचरज से घूरते देख कर कहा, छोटी चाची, ज़रा अपनी डिबिया का गमकोआ जर्दा तो खिलाना बहुत दिन हुए....'

चाची कई कारणों से जली-भुनी रहती थी, सिरचन से। गुस्सा उतारने का ऐसा मौक़ा फिर नहीं मिल सकता। झनकती हुई बोली, मसखरी करता है? तुम्हारी चढ़ी हुई जीभ में आग लगे। घर में भी पान और गमकौआ जर्दा खाते हो?... चटोर कहीं के!

मेरा कलेजा धड़क उठा... यत्परो नास्ति!

बस, सिरचन की उंगलियों में सुतली के फंदे पड़ गए। मानो, कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा पान को मुँह में घुलाता रहा। फिर अचानक उठ कर पिछवाड़े पीक थूक आया। अपनी छुरी, हँसियाँ वगैरह समेट संभाल कर झोले में रखे। टंगी हुई। अधूरी चिक पर एक निगाह डाली और हनहनाता हुआ आंगन के बाहर निकल गया।

चाची बड़बड़ाई, अरे बाप रे बाप! इतनी तेजी! कोई मुफ्त में तो काम नहीं करता। आठ रुपए में मोहरछाप वाली धोती आती है... इस मुँहझौंसे के मुँह में लगाम है, न आंख में शील। पैसा खर्च करने पर सैकड़ों चिक मिलेंगी। बांतर टोली की औरतें सिर पर गट्टर ले कर गली गली मारी फिरती हैं।'

मानू कुछ नहीं बोली, चुपचाप अधूरी चिक को देखती रही... सातो तारे मंद पड़ गए।

माँ बोली जाने दे बेटी जी छोटा मत कर, मानू, मेले से खरीद कर भेज दूँगी।'

मानू को याद आया, विवाह में सिरचन के हाथ की शीतलपाटी दी थी माँ ने ससुरालवालों ने न जाने कितनी बार

खोल कर दिखलाया था पटना और कलकत्ता के मेहमानों को। वह उठ कर बड़ी भाभी के कमरे में चली गई।

मैं सिरचन को मनाने गया। देखा, एक फटी शीतलपाटी पर लेट कर वह कुछ सोच रहा है।

मुझे देखते ही बोला, बबुआ जी! अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं... मोहर छाप वाली धोती ले कर क्या करूंगा? कौन पहनेगा?... ससुरी खुद मरी, बेटे बेटियों को ले गई अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली जिंदा रहती तो में ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी उसी की बुनी हुई है। इस शीतलपाटी को छू कर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूंगा... गांवभर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी.. अब क्या?' मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है। वह अब नहीं आ सकता।

बड़ी भाभी अधूरी चिक में रंगीन छींट की झालर लगाने लगी, यह भी बेजा नहीं दिखलाई पड़ता, क्यों मानू?"

मानू कुछ नहीं बोली.. बेचारी! किंतु मैं चुप नहीं रह सका, चाची और मंझली भाभी की नज़र न लग जाए इसमें भी। मानू को ससुराल पहुंचाने में ही जा रहा था।

स्टेशन पर सामान मिलाते समय देखा, मानू बड़े जतन से अधूरे चिक को मोड़ कर लिए जा रही है अपने साथ मन-ही-मन सिरचन पर गुस्सा हो आया। चाची के सुर-में-सुर मिला कर कोसने को जी हुआ... कामचोर, चटोर...!

गाड़ी आई। सामान चढ़ा कर मैं दरवाज़ा बंद कर रहा था कि प्लेटफॉर्म पर दौड़ते हुए सिरचन पर नज़र पड़ी, बबुआजी!" उसने दरवाज़े के पास आ कर पुकारा।

'क्या है?' मैंने खिड़की से गर्दन निकाल कर झिड़की के स्वर में कहा। सिरचन ने पीठ पर लादे हुए बोझ को उतार कर मेरी ओर देखा, दौड़ता आया हूँ... दरवाजा खोलिए। मानू दीदी कहां हैं? एक बार देखूं!'

मैंने दरवाज़ा खोल दिया।

'सिरचन दादा!' मानू इतना ही बोल सकी।

खिड़की के पास खड़े हो कर सिरचन ने हकलाते हुए कहा, यह मेरी ओर से है। सब चीज़ है दीदी! शीतलपाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी, कुश की।'

गाड़ी चल पड़ी।

मानू मोहर छापवाली धोती का दाम निकाल कर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दांत से काट कर दोनों हाथ जोड़ दिए।

मानू फूट-फूट रो रही थी। में बंडल को खोल कर देखने लगा- ऐसी कारीगरी, ऐसी बारीक़ी, रंगीन सुतलियों के फंदों का ऐसा काम, पहली बार देख रहा था।

~@~

4. जानवर और जानवर

लेखक: मोहन राकेश

लेखक परिचय:-

जन्म:- मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर, पंजाब में हुआ था। उनके पिता पेशे से वकील थे और साथ ही साहित्य और संगीत के प्रेमी भी थे। पिता की साहित्यिक रुचि का प्रभाव मोहन राकेश पर भी पड़ा।

कथा साहित्य:- मोहन राकेश पहले कहानी विधा के ज़रिये हिन्दी में आए। उनकी मिसपाल, आद्रा, ग्लासटैंक, जानवर और मलबे का मालिक आदि कहानियों ने हिन्दी कहानी का परिदृश्य ही बदल दिया। वे 'नयी कहानी आन्दोलन' के शीर्ष कथाकार के रूप में चर्चित हुए। मोहन राकेश हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न नाट्य लेखक और उपन्यासकार हैं। उनकी कहानियों में एक निरंतर विकास मिलता है, जिससे वे आधुनिक मनुष्य की नियति के निकट से निकटतर आते गए हैं। उनकी खूबी यह थी कि वे कथा-शिल्प के उस्ताद थे और उनकी भाषा में गज़ब का सधाव ही नहीं, एक शास्त्रीय अनुशासन भी है। कहानी से लेकर उपन्यास तक में उनकी कथा-भूमि शहरी मध्य वर्ग है। कुछ कहानियों में भारत-विभाजन की पीड़ा बहुत सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। कहानी के बाद राकेश को सफलता नाट्य-लेखन के क्षेत्र में मिली है।

बहुत-से लोग यहाँ-वहाँ सिर लटकाए बैठे थे जैसे किसी का मातम करने आए हों। कुछ लोग अपनी पोटलियाँ खोलकर खाना खा रहे थे। दी-एक व्यक्ति पगडियाँ सिर के नीचे रखकर कम्पाउंड के बाहर सडक के किनारे बिखर गये थे। छोले-कुलचे वाले का रोज़गार गरम था, और कमेटी के नल के पास एक छोटा-मोटा क्यू लगा था। नल के पास कुर्सी डालकर बैठा अर्ज़िनवीस धड़ाधड़ अर्ज़ियाँ टाइप कर रहा था। उसके माथे से बहकर पसीना उसके होंठों पर आ रहा था, लेकिन उसे पोंछने की फुरसत नहीं थी। सफ़ेद दाढियों वाले दी-तीन लम्बे-ऊँचे जाट, अपनी लाठियों पर झुके हुए, उसके खाली होने का इन्तज़ार कर रहे थे। धूप से बचने के लिए अर्ज़िनवीस ने जो टाट का परदा लगा रखा था, वह हवा से उड़ा जा रहा था।

थोड़ी दूर मोढ़े पर बैठा उसका लडका अँग्रेज़ी प्राइमर को रट्टा लगा रहा था-सी ए टी कैट-कैट माने बिल्ली; बी ए टी बैट-बैट माने बल्ला; एफ ए टी फैट-फैट माने मोटा... कमीज़ों के आधे बटन खोले और बगल में फ़ाइलें दबाए कुछ बाबू एक-दूसरे से छेड़खानी करते, रजिस्ट्रेशन ब्रांच से रिकार्ड ब्रांच की तरफ जा रहे थे। लाल बेल्ट वाला चपरासी, आस-पास की भीड़ से उदासीन, अपने स्टूल पर बैठा मन ही मन कुछ हिसाब कर रहा था। कभी उसके होंठ हिलते थे, और कभी सिर हिल जाता था। सारे कम्पाउंड में सितम्बर की खुली धूप फैली थी। चिडियों के कुछ बच्चे डालों से कूदने और फिर ऊपर को उड़ने का अभ्यास कर रहे थे और कई

बड़े-बड़े कौए पोर्च के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहल क़दमी कर रहे थे। एक सत्तर-पचहत्तर की बुढिया, जिसका सिर काँप रहा था और चेहरा झुर्रियों के गुंझल के सिवा कुछ नहीं था, लोगों से पूछ रही थी कि वह अपने लडक़े के मरने के बाद उसके नाम एलाट हुई ज़मीन की हकदार हो जाती है या नहीं...?

अन्दर हॉल कमरे में फ़ाइलें धीरे-धीरे चल रही थीं। दी-चार बाबू बीच की मेज़ के पास जमा होकर चाय पी रहे थे। उनमें से एक दफ़्तरा कागज़ पर लिखी अपनी ताज़ा ग़ज़ल दीस्तों को सुना रहा था और दीस्त इस विश्वास के साथ सुन रहे थे कि वह ग़ज़ल उसने 'शमा' या 'बीसवीं सदी' के किसी पुराने अंक में से उड़ाई है।

"अज़ीज़ साहब, ये शेअर आपने आज ही कहे हैं, या पहले के कहे हुए शेअर आज अचानक याद हो आए हैं?" साँवले चेहरे और घनी मूँछों वाले एक बाबू ने बायीं आँख को ज़रा-सा दबाकर पूछा। आस-पास खड़े सब लोगों के चेहरे खिल गये।

"यह बिल्कुल ताज़ा ग़ज़ल है," अज़ीज़ साहब ने अदालत में खड़े होकर हलफिया बयान देने के लहज़े में कहा, "इससे पहले भी इसी वज़न पर कोई और चीज़ कही हो तो याद नहीं।" और फिर आँखों से सबके चेहरों को टटोलते हुए वे हल्की हँसी के साथ बोले, "अपना दीवान तो कोई रिसर्चदां ही मुरत्तब करेगा..."

एक फरमायशी कहकहा लगा जिसे 'शी-शी' की आवाज़ों ने बीच में ही दबा दिया। कहकहे पर लगायी गयी इस ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ़ ले आये हैं। कुछ देर का वक्फा रहा, जिसमें सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह की फ़ाइल एक मेज़ से एक्शन के लिए दूसरी मेज़ पर पहुँच गयी, सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह मुसकराता हुआ हॉल से बाहर चला गया, और जिस बाबू की मेज़ से फ़ाइल गयी थी, वह पाँच रूपये के नोट को सहलाता हुआ चाय पीने वालों के जमघट में आ शामिल हुआ। अज़ीज़ साहब अब आवाज़ ज़रा धीमी करके ग़ज़ल का अगला शेअर सुनाने लगे।

साहब के कमरे से घंटी हुई। चपरासी मुस्तैदी से उठकर अन्दर गया, और उसी मुस्तैदी से वापस आकर फिर अपने स्टूल पर बैठ गया।

चपरासी से खिड़की का पर्दा ठीक कराकर कमिश्नर साहब ने मेज़ पर रखे ढेर-से कागज़ों पर एक साथ दस्तख़त किए और पाइप सुलगाकर 'रीडर्ज़ डाइजेस्ट' का ताज़ा अंक बैग से निकाल लिया। लेटीशिया बाल्ड्रिज का लेख कि उसे इतालवी मर्दों से क्यों प्यार है, वे पढ़ चुके थे। और लेखों में हृदय की शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में जे।डी। रैटक्लिफ का लेख उन्होंने सबसे पहले पढ़ने के लिए चुन रखा था। पृष्ठ एक सौ ग्यारह खोलकर वे हृदय के नए ऑपरेशन का ब्यौरा पढ़ने लगे।

तभी बाहर से कुछ शोर सुनाई देने लगा।

कम्पाउंड में पेड़ के नीचे बिखरकर बैठे लोगों में चार नए चेहरे आ शामिल हुए थे। एक अधेड़ आदमी था जिसने अपनी पगड़ी ज़मीन पर बिछा ली थी और हाथ पीछे करके तथा टाँगें फैलाकर उस पर बैठ गया था। पगड़ी के सिरे की तरफ़ उससे ज़रा बड़ी उम्र की एक स्त्री और एक जवान लडक़ी बैठी थीं; और उनके पास खड़ा एक दुबला-सा लडक़ा आस-पास की हर चीज़ को घूरती नज़र से देख रहा था, अधेड़ मरद की फैली हुई टाँगें धीरे-धीरे पूरी खुल गयी थीं और आवाज़ इतनी ऊँची हो गयी थी कि कम्पाउंड के बाहर से भी बहुत-से लोगों का ध्यान उसकी तरफ़ खिंच गया था। वह बोलता हुआ साथ अपने घुटने पर हाथ मार रहा था। "सरकार वक़्त ले रही है! दस-पाँच साल में सरकार फ़ैसला करेगी कि अर्ज़ी मंज़ूर होनी चाहिए या नहीं। सालो, यमराज भी तो हमारा वक़्त गिन रहा है। उधर वह वक़्त पूरा होगा और इधर तुमसे पता चलेगा कि हमारी अर्ज़ी मंज़ूर हो गयी है।"

चपरासी की टाँगें ज़मीन पर पुख़्ता हो गयीं, और वह सीधा खड़ा हो गया। कम्पाउंड में बिखरकर बैठे और लेटे हुए लोग अपनी-अपनी जगह पर कस गये। कई लोग उस पेड़ के पास आ जमा हुए।

"दो साल से अर्ज़ी दे रखी है कि सालो, ज़मीन के नाम पर तुमने मुझे जो गड्ढा एलाट कर दिया है, उसकी जगह कोई दूसरी ज़मीन दी। मगर दो साल से अर्ज़ी यहाँ के दो कमरे ही पार नहीं कर पायी!" वह आदमी अब जैसे एक

मजमे में बैठकर तकरीर करने लगा, "इस कमरे से उस कमरे में अर्ज़ी के जाने में वक़्त लगता है! इस मेज़ से उस मेज़ तक जाने में भी वक़्त लगता है! सरकार वक़्त ले रही है! लो, मैं आ गया हूँ आज यहीं पर अपना सारा घर-बार लेकर। ले लो जितना वक़्त तुम्हें लेना है!... सात साल की भुखमरी के बाद सालों ने ज़मीन दी है मुझे-सौ मरले का गड़ाढा! उसमें क्या मैं बाप-दादों की अस्थियाँ गाड़ूँगा? अर्ज़ी दी थी कि मुझे सौ मरले की जगह पचास मरले दे दो, लेकिन ज़मीन तो दी! मगर अर्ज़ी दो साल से वक़्त ले रही है! मैं भूखा मर रहा हूँ, और अर्ज़ी वक़्त ले रही है!"

चपरासी अपने हथियार लिये हुए आगे आया-माथे पर त्योरियाँ और आँखों में क्रोध। आस-पास की भीड़ को हटाता हुआ वह उसके पास आ गया।

"ए मिस्टर, चल हियां से बाहर!" उसने हथियारों की पूरी चोट के साथ कहा, "चल.. उठ...!"

"मिस्टर आज यहाँ से नहीं उठ सकता।" वह आदमी अपनी टाँगें थोड़ी और चौड़ी करके बोला, "मिस्टर आज यहाँ का बादशाह है। पहले मिस्टर देश के बेताज बादशाहों की जय बुलाता था। अब वह किसी की जय नहीं बुलाता। अब वह खुद यहाँ का बादशाह है... बेलाज बादशाह उसे कोई लाज-शरम नहीं है। उस पर किसी का हुक्म नहीं चलता। समझे, चपरासी बादशाह!"

"अभी तुझे पता चल जाएगा कि तुझ पर किसी का हुक्म चलता है या नहीं," चपरासी बादशाह और गरम हुआ,

"अभी पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाएगा तो तेरी सारी बादशाही निकल जाएगी..."

"हा-हा!" बेलाज बादशाह हँसा। "तेरी पुलिस मेरी बादशाही निकालेगी? तू बुला पुलिस को। मैं पुलिस के सामने नंगा हो जाऊँगा और कहूँगा कि निकालो मेरी बादशाही! हममें से किस-किसकी बादशाही निकालेगी पुलिस? ये मेरे साथ तीन बादशाह और हैं। यह मेरे भाई की बेवा है-उस भाई की जिसे पाकिस्तान में टाँगों से पकड़कर चीर दिया गया था। यह मेरे भाई का लडक़ा है जो अभी से तपेदिक का मरीज़ है। और यह मेरे भाई की लडक़ी है जो अब ब्याहने लायक हो गयी है। इसकी बड़ी कुँवारी बहन आज भी पाकिस्तान में है। आज मैंने इन सबको बादशाही दे दी है। तू ले आ जाकर अपनी पुलिस, कि आकर इन सबकी बादशाही निकाल दे। कुत्ता साला...!"

अन्दर से कई-एक बाबू निकलकर बाहर आ गये थे। 'कुत्ता साला' सुनकर चपरासी आपे से बाहर हो गया। वह तैश में उसे बाँह से पकड़कर घसीटने लगा, "तुझे अभी पता चल जाता है कि कौन साला कुत्ता है! मैं तुझे मार-मारकर..." और उसने उसे अपने टूटे हुए बूट की एक ठोकर दी। स्त्री और लडक़ी सहमकर वहाँ से हट गयीं। लडक़ा एक तरफ़ खड़ा होकर रोने लगा।

बाबू लोग भीड़ को हटाते हुए आगे बढ़ आये और उन्होंने चपरासी को उस आदमी के पास से हटा लिया।

चपरासी फिर भी बड़बड़ाता रहा, "कमीना आदमी, दफ़्तर में आकर गाली देता है। मैं अभी तुझे दिखा देता कि..."

"एक तुम्हीं नहीं, यहाँ तुम सबके-सब कुत्ते हो," वह आदमी कहता रहा, "तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूँ। फर्क सिर्फ़ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो-हम लोगों की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ़ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ। उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ, और उसकी तरफ़ से भौंकता हूँ। उसका घर इन्साफ़ का घर है। मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ। तुम सब उसके इन्साफ़ की दौलत के लुटेरे हो। तुम पर भौंकना मेरा फर्ज़ है, मेरे मालिक का फरमान है। मेरा तुमसे अज़ली बैर है। कुत्ते का बैरी कुत्ता होता है। तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ। मैं अकेला हूँ, इसलिए तुम सब मिलकर मुझे मारो। मुझे यहाँ से निकाल दी। लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूँगा। तुम मेरा भौंकना बन्द नहीं कर सकते। मेरे अन्दर मेरे मालिक का नर है, मेरे वाहेगुरु का तेज़ है। मुझे जहाँ बन्द कर दीगे, मैं वहाँ भौकूँगा, और भौंक-भौंककर तुम सबके कान फाड़ दूँगा। साले, आदमी के कुत्ते, जूठी हड्डी पर मरनेवाले कुत्ते दुम हिला-हिलाकर जीनेवाले कुत्ते...!"

"बाबा जी, बस करो," एक बाबू हाथ जोड़कर बोला, "हम लोगों पर रहम खाओ, और अपनी यह सन्तबानी बन्द करो। बताओ तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा केस क्या है...?"

"मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात! मेरे माँ-बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। अब यही नाम है जो

तुम्हारे दफ़्तर का दिया हुआ है। मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूँ। मेरा और कोई नाम नहीं है। मेरा यह नाम याद कर लो। अपनी डायरी में लिख लो। वाहगुरु का कुत्ता-बारह सौ छब्बीस बटा सात।"

"बाबा जी, आज जाओ, कल या परसों आ जाना। तुम्हारी अर्ज़ी की कार्रवाई तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है..."

"तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है! और मैं खुद ही तकरीबन-तकरीबन पूरा हो चुका हूँ! अब देखना यह है कि पहले कार्रवाई पूरी होती है, कि पहले मैं पूरा होता हूँ! एक तरफ़ सरकार का हुनर है और दूसरी तरफ़ परमात्मा का हुनर है! तुम्हारा तकरीबन-तकरीबन अभी दफ़्तर में ही रहेगा और मेरा तकरीबन-तकरीबन कफ़न में पहुँच जाएगा। सालों ने सारी पढ़ाई खर्च करके दो लफ़्ज ईज़ाद किये हैं- शायद और तकरीबन। 'शायद आपके कागज़ ऊपर चले गये हैं-तकरीबन-तकरीबन कार्रवाई पूरी हो चुकी है!' शायद से निकालो और तकरीबन में डाल दी! तकरीबन से निकालो और शायद में गर्क कर दी। तकरीबन तीन-चार महीने में तहक़ीक़ात होगी, शायद महीने-दो महीने में रिपोर्ट आएगी।' मैं आज शायद और तकरीबन दोनों घर पर छोड़ आया हूँ। मैं यहाँ बैठा हूँ और यहीं बैठा रहूँगा। मेरा काम होना है, तो आज ही होगा और अभी होगा। तुम्हारे शायद और तकरीबन के गाहक ये सब खड़े हैं। यह ठगी इनसे करो..."

बाबू लोग अपनी सदभावना के प्रभाव से निराश होकर एक-एक करके अन्दर लौटने लगे।

"बैठा है, बैठा रहने दी।"

"बकता है, बकने दी।"

"साला बदमाशी से काम निकालना चाहता है।"

"लेट हिम बार्क हिमसेल्फ टु डेथ।"

बाबुओं के साथ चपरासी भी बड़बड़ाता हुआ अपने स्टूल पर लौट गया। "मैं साले के दाँत तोड़ देता। अब बाबू लोग हाकिम हैं और हाकिमों का कहा मानना पड़ता है, वरना..."

"अरे बाबा, शान्ति से काम ले। यहाँ मित्रत चलती है, पैसा चलता है, धौंस नहीं चलती," भीड़ में से कोई उसे समझाने लगा।

वह आदमी उठकर खड़ा हो गया।

"मगर परमात्मा का हुक्म हर जगह चलता है," वह अपनी कमीज़ उतारता हुआ बोला, "और परमात्मा के हुक्म से आज बेलाज बादशाह नंगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जाएगा। आज वह नंगी पीठ पर साहब के डंडे खाएगा। आज वह बूटों की ठोकरें खाकर प्रान देगा। लेकिन वह किसी की मित्रत नहीं करेगा। किसी को पैसा नहीं चढ़ाएगा। किसी की पूजा नहीं करेगा। जो वाहगुरु की पूजा करता है, वह और किसी की पूजा नहीं कर सकता। तो वाहगुरु का नाम लेकर..."

और इससे पहले कि वह अपने कहे को किये में परिणत करता, दो-एक आदमियों ने बढकर तहमद की गाँठ पर रखे उसके हाथ को पकड़ लिया। बेलाज बादशाह अपना हाथ छुड़ाने के लिए संघर्ष करने लगा।

"मुझे जाकर पूछने दी कि क्या महात्मा गाँधी ने इसीलिए इन्हें आज़ादी दिलाई थी कि ये आज़ादी के साथ इस तरह सम्भोग करें? उसकी मिट्टी ख़राब करें? उसके नाम पर कलंक लगाएँ? उसे टके-टके की फ़ाइलों में बाँधकर ज़लील करें? लोगों के दिलों में उसके लिए नफ़रत पैदा करें? इन्सान के तन पर कपड़े देखकर बात इन लोगों की समझ में नहीं आती। शरम तो उसे होती है जो इन्सान हो। मैं तो आप कहता हूँ कि मैं इन्सान नहीं, कुत्ता हूँ...!"

सहसा भीड़ में एक दहशत-सी फैल गयी। कमिश्नर साहब अपने कमरे से बाहर निकल आये थे। वे माथे की त्योरियों और चेहरे की झुर्रियों को गहरा किये भीड़ के बीच में आ गये।

"क्या बात है? क्या चाहते हो तुम?"

"आपसे मिलना चाहता हूँ, साहब," वह आदमी साहब को घूरता हुआ बोला, "सौ मरले का एक गड़ावा मेरे नाम एलाट हुआ है। वह गड़ावा आपको वापस करना चाहता हूँ ताकि सरकार उसमें एक तालाब बनवा दे, और अफ़सर लोग शाम को वहाँ जाकर मछलियाँ मारा करें। या उस गड्ढे में सरकार एक तहख़ाना बनवा दे और मेरे जैसे कुत्तों को उसमें बन्द कर दे..."

"ज़्यादा बक-बक मत करो, और अपना केस लेकर मेरे पास आओ।"

"मेरा केस मेरे पास नहीं है, साहब! दो साल से सरकार के पास है-आपके पास है। मेरे पास अपना शरीर और दो

कपड़े हैं। चार दिन बाद ये भी नहीं रहेंगे, इसलिए इन्हें भी आज ही उतारे दे रहा हूँ। इसके बाद बाकी सिर्फ़ बारह सौ छब्बीस बटा सात रह जाएगा। बारह सौ छब्बीस बटा सात को मार-मारकर परमात्मा के हुजूर में भेज दिया जाएगा..."

"यह बकवास बन्द करो और मेरे साथ अन्दर आओ।"

और कमिश्नर साहब अपने कमरे में वापस चले गये। वह आदमी भी कमीज़ कन्धे पर रखे उस कमरे की तरफ़ चल दिया।

"दो साल चक्कर लगाता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। खुशामदें करता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। वास्ते देता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी..."

चपरासी ने उसके लिए चिक उठा दी और वह कमिश्नर साहब के कमरे में दाखिल हो गया। घंटी बजी, फ़ाइलें हिलीं, बाबुओं की बुलाहट हुई, और आधे घंटे के बाद बेलाज बादशाह मुस्कराता हुआ बाहर निकल आया। उत्सुक आँखों की भीड़ ने उसे आते देखा, तो वह फिर बोलने लगा, "चूहों की तरह बिटर-बिटर देखने में कुछ नहीं होता। भौंको, भौंको, सब-के-सब भौंको। अपने-आप सालों के कान फट जाएँगे। भौंको कुत्तो, भौंको..."

उसकी भौजाई दोनों बच्चों के साथ गेट के पास खड़ी इन्तज़ार कर रही थी। लडक़े और लडक़ी के कन्धों पर हाथ रखते हुए वह सचमुच बादशाह की तरह सडक़ पर चलने लगा।

"हयादार हो तो सालहा-साल मुँह लटकाए खड़े रहो। अर्जियाँ टाइप कराओ और नल का पानी पियो। सरकार वक्त ले रही है! नहीं तो बेहया बनो। बेहयाई हज़ार बरकत है।"

वह सहसा रुका और ज़ोर से हँसा।

"यारो, बेहयाई हज़ार बरकत है।"

उसके चले जाने के बाद कम्पाउंड में और आस-पास मातमी वातावरण पहले से और गहरा हो गया। भीड़ धीरे-धीरे बिखरकर अपनी जगहों पर चली गयी। चपरासी की टाँगें फिर स्टूल पर झूलने लगीं। सामने के कैंटीन का लडका बाबुओं के कमरे में एक सेट चाय ले गया। अर्जिनवीस की मशीन चलने लगी और टिक-टिक की आवाज़ के साथ उसका लडका फिर अपना सबक दीहराने लगा। "पी.ई.एन पेन-पेन माने कलम; एच.ई.एन हेन-हेन माने मुर्गी; डी.ई.एन डेन-डेन माने अँधेरी गुफा...!"

~@~

5. हृदय की पुकार

लेखक: अ. न. कृष्णराव

लेखक परिचय:-

आधुनिक कन्नड़ साहित्य को नयी दिशा की ओर अग्रसर करनेवाले बहुमुखी प्रतिभाशाली श्री अ.न.कृ. आधुनिक कन्नड़ साहित्य के आधार स्तम्भों में प्रमुख माने जाते हैं। साहित्य क्षेत्र में आप अपूर्व शक्ति हैं। कन्नड़ के दीन व्यक्ति हैं। साहित्य की विधा में चाहे कहानी हो या उपन्यास, नाटक हो या निबन्ध, विमर्शात्मक ग्रन्थ हो या शोधग्रन्थ आप श्रेष्ठ हैं। आप कन्नड़ के प्रथम साहित्यकार हैं, जिन्होंने डेढ़ सौ से अधिक उपन्यास लिखे हैं। आपको आधुनिक कन्नड़ के अनभिव्यक्ति साहित्य सम्राट कहा जाता है।

"उसमान!..... उसमान!...

सोये हुए पुत्र से जवाब नहीं आया।

"उसमान!..... बेटा!....."

"दादा!"

"उठो बेटा!"

बेटे ने उठकर बाप का मुख देखा। उसके विशाल मुख पर जगमगाते हुए दी बड़े बड़े अश्रुपूर्ण नयनों को देखा। बाप ने भी बेटे को देखा। नींद के बहाने सारी रात रोकर काटेने की वजह से लाल हुए नेत्रों की गुप्त पीड़ा का अनुभव किया। जन्म लेने के छः महीने बाद ही माँ को खोकर, उसमान अपने पिता के अपरिमित प्रेम के आश्रय में पला था। बेटे को

फूलता-फलता देखकर बाप ने गरीबी की दारुण वेदना भी भुला दी थी। अब उसके सामने खड़ा था, उसका बेटा... जिसे उसने बीस वर्ष तक पाल पोसकर बड़ा किया था जो उसके जीवन का एकमात्र प्रकाश था। याद करते करते मुहम्मद की लम्बी सफेद दाढ़ी आँसुओं से भीग गयी।

उसने कई बार सोचा था कि बेटे को इस जीवन से छुड़ा, चार आदमियों के बीच खड़े होने योग्य बनाऊँ। बड़े सवेरे उठना, खाली पेट को भरने के लिए कँधे पर सारंगी लादकर बाजार या और कहीं लोगों से भरे प्रदेश जाना, कबीर, मीरा, पुरन्दरदास आदि के भजन गला फाड़-फाड़कर गाना, दोपहर को पैसे बटोरकर अपना पेट भरना, जीवन के इस दैनिक कार्यक्रम से मुहम्मद बिलकुल ऊब गया था। 'साँझ को क्या हो? कल क्या होगा?.. बीमार पड़ा तो क्या करूँ?' बिना इन चिन्ताओं के दोनों वक्त अपना पेट भरने योग्य कोई काम उसमान को दिलाने की उसकी बड़ी अभिलाषा कुछ ही दिनों पहले पूरी हुई थी।

उसमान का सुन्दर रूप, सुरीला गला, चलने-फिरने के ढंग आदि ने कलकत्ता पारसी नाटक कंपनी के मालिकों को आकर्षित किया था। बहुत चर्चा के बाद निश्चय हुआ कि उसमान अपने जीवन की सारी उन्नति के एकमात्र कारण अपने बाप को छोड़कर, कम्पनी में माहवार पचास रूपये की तनख्वाह पर शामिल हो जाय। उसमान को तृप्ति थी कि अपनी कमाई के रूपये भेजकर दी चार दिन पिता को आराम से तो रख सकेगा। बेओ के वियोग की चिन्ता से मुहम्मद दो-

चार दिनों में ही अधमारा हो गया था। लेकिन उसके मान में, कभी-कभी बिजली की तरह विचार उठते, "उसके सुख को मैं क्यों कुण्ठित करूँ? मेरा उसमान एक बहुत बड़ा गवैय्या भी हो जायगा।" इस विचार से उसके मन को शांति मिलती है।

रेल के चलने का समय हो गया। बाप बेटा एक दूसरे की बाहों में बद्ध होकर आँसुओं से एक दूसरे को भिगो रहे हैं। वृद्ध ऋषि सा बाप तरुण सुन्दर बेटा। दोनों दुख में अपने को भूल गये हैं। बेटे का मन बाप की चिन्ता से भरा और बाप का बेटे की चिन्ता से। बीच-बीच में अस्पष्ट रूप से बोल उठता।

"दादा!"

"बेटा!" प्रतिध्वनि की भाँति बाप के हृदय को चीरता हुई आह निकलती। आखिर रेल के कर्मचारी ने दोनों को अलग किया। रेल भी धीरे-धीरे चली... रेल के साथ ही मुहम्मद बेटे को अपलक नेत्रों से देखते हुए दौड़ता। बेटा झुककर बाप की दाढ़ी पर हाथ फेरता।

"दादा... दादा..." वह पुकारता। थककर ठहर गया। रेल वेग से आँखों से ओझल हो गयी। मुहम्मद पाँव घसीटते हुए धीरे-धीरे लौटा। उसकी जबान पर तीन ही बातें थीं, जो मंत्र के उच्चारण की तरह रुक-रुककर स्पष्ट सुनाई पड़ती थीं। आसपास जाने वाले आश्चर्य से बूढ़े की तरफ देखते, फिर हँसते चले जाते। लेकिन बूढ़ा मुहम्मद सिर झुकाकर चुपचाप

आगे बढ़ रहा था। उसके मुख से लगातार तीन शब्द निकलते थे - "बेटा... दादा... खुदा..."

कलकत्ते की पारसी नाटक कम्पनी में उसमान को पाँच वर्ष बीत गये। अब उसमान वह नहीं था जो अपने पेट भरने पाँच वर्ष पहले कम्पनी में शामिल हुआ था। अब वह कम्पनी का सर्वश्रेष्ठ तथा प्रधान अभिनेता गवैया उसमान खां साहब था। रंग, रोशनी और आनन्द रहित दरिद्र कुटीर जीवन से रंगीले साम्राज्य के सिंहासन पर एकदम चढ़ जाने के कारण उसमान अपना पुराना जीवन भूलता जा रहा था। पिता को छोड़कर आने के बाद इन पाँच वर्षों में विद्यार्जन में उसने जो कष्ट उठाये थे, वह भी भूलता गया। उसकी आज की स्थिति के प्रधान कारण पिता की सहनशीलता, आत्मार्पण आदि भी उसने भुला दिये। उसका लक्ष्य सिर्फ यही था कि वह कैसे एक पद से दूसरे उच्चतर पद की तरफ बढ़े। इस तरह पाँच वर्ष के सतत प्रयत्न से गवैया के स्थान को प्राप्त कर उसमान अपनी कम्पनी के मालिक तथा प्रेक्षकों की आँखों का तारा बन गया था।

उसमान के सुरीले गले की मीठी तान पर सब मुग्ध हो गये थे। कभी-कभी उसमान अपने संगीत पर आप ही रीझ जाता। रंगमंच के लायक रूप भी होने की वजह उसकी उन्नति में बड़ी सहायता पहुँची। मजनू फरहाद, सुलेमान, दुष्यंत आदि श्रृंगार रस प्रधान पात्रों की भूमिका के लिए उसमान बहुत प्रसिद्ध था। परसों की भिक्षावृत्ति भी खतम हो चुकी थी और कल की साधना भी पूरी हो गयी थी। आज

उसमान सिद्ध पुरुष था। उसकी छोटी सी बात भी उसके अनुयायियों के लिए महत्तर आज्ञा बन जाती थी। कम्पनी के मालिक से लेकर मामूली नौकरी तक उसका मन बहलाना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते थे। इस तरह उसमान कम्पनी का अनभिषिक्त सत्राट था। नाटकों को स्वीकार करना हो, उसमान की आज्ञा चाहिए। नये नटों की कम्पनी में भर्ती करना हो, उसमान की स्वीकृति चाहिए। नाटकों के प्रदर्शन के लिए उसमान की राय अत्यन्त आवश्यक थी। कम्पनी के सारे काम उसमान की इच्छा के अनुसार चलने लगे।

पारसी कम्पनी में नायक उसमान था, तो नायिका प्यारी थी। उसमान की ख्याति सुनकर प्यारी अपनी पुरानी कम्पनी छोड़कर "हीरोइन" बनने के लिए इस कम्पनी में आ गयी थी। उसकी कम्पनी में शामिल करने के बारे में भिन्न भिन्न अभिप्राय पैदा हुए थे। कुछ नटों का अभिप्राय था कि यह बहुत कम्पनियों और उनके मालिकों का दिवाला निकलवाने वाली नटी है। व्यवस्थापक का विचार था कि वह जितनी तनख्वाह माँगती है उसे देना हमारी शक्ति से परे है। लेकिन उसमान का इरादा था - वह बहुत सुन्दर, वह हमारी कम्पनी के लिए जरूरी है।" आखिर यही तय हो गया।

पतली गोरी देह, लम्बे घुंघराले केश बड़े बड़े चंचल कमल से नयन, जरा छोटी होने पर भी सुन्दर नाक, उस पर रत्न की नथ, कानों में वज के झूमर, गुलाब के रंग की चोली पर नारंगी रंग की महीन साड़ी, हाथों में रेशम की छोटी सी थैली, उसमान प्यारी के ऐसे चलीले सलोने शरीर पर मुग्ध

हुआ हो या उसके कोमल स्वर पर, कुछ भी हो, प्यारी उसकी कम्पनी की नायिक बन ही गयी।

उसमान और प्यारी के गान और अभिनय देखने के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे। हर कहीं उनकी कीर्ति का बखान हो रहा था। हर किसी की जबान पर उन्हीं गीतों के पद रमते, हर दिशा में उसमान और प्यारी की कीर्तिलता फैलने - महकने लगी।

जैसे-जैसे उसमान प्यारी की ख्याति फैलने लगी, वैसे ही उनके चाल चलन के बारे में भी अफवाहें फैलने लगीं। प्यारी के विरूद्ध जितने नथ थे, वे उस पर झूठा सच्चा आरोपण लादते और बाहर भी उसकी प्रचार करते। कई बार बुरे अर्थ को सूचित करने वाले समाचार भी पत्रों में छपने लगे। रंगमंच की नायिका उसमान के जीवन में भी पाँव रखती गयी। प्रेम के अभाव में सूखे पड़े हुए उसमान के हृदय कानन को कामरूपी ज्वाला बड़े जोर से जलाने लगी। मैं... मेरा मान... मेरी विद्या, मेरी हैसियत... ये सब विचार उसमान के मन से प्यारी की याद आते ही धुल जाते। बैठा हो, खड़ा हो, जहाँ कहीं भी हो, उसकी आँखों को प्यारी ही प्यारी दिखाई देती। प्रेम के पवित्र जीवन के लिए तैयार होते समय ही मोह की ज्वाला उसमान के अंतःकरण को कुरेदने लगी। प्यारी उस पर रीझती, तो उसमान विनीत भक्त की भाँति अपना सब कुछ उसके लिए अर्पण करता, वह तिरस्कार करती तो भिक्षुक की तरह प्रणय भिक्षा माँगता।

प्यारी जब अपने पुराने दीस्तों को खोजती अभिसारिका बन जाती तब उसमान क्रोध से जर्जरित हो जाता। लेकिन प्यारी के एक ही चितवन से उसके क्रोध ककी भंयकर ज्वाला हिम की तरह पिघलकर आँसुओं की धारा के रूप बहते हुए प्यारी के पाँव धोती। जब वह रूठकर जाती, तब देवी के सच्चे उपासक की भाँति खुदा से प्रार्थना करता कि उसका कृपा कटाक्ष मुझ पर शीघ्र पड़े। असल में उसमान का सरल, शुभ्र, पवित्र मन, भयंकर ताण्डव नृत्य के रंग के रूप में परिणत हो गया। इसको शांत करने के लिए। प्यारी के अमृत हस्त से ही प्रथम बार सीखे हुए मधुपान में अपने को भूल जाने की कोशिश करता। मोह की पीड़ा एक तरफ, मधु का प्रलोभन दूसरी तरफ इन दोनों के बीच फँसकर उसमान को अपने आप की सुध न रही। मन लगता, तो रंगमंच पर ठीक तरह से अभिनय करता, नहीं तो तरह - तरह के बेढंगे अभिनय करते हुए बेसिर पैर की बातें बकता और अभिनय का काम ज्यों त्यों निभा लेता।

नगर के पश्चिम की छोर पर कुछ झोंपड़ियाँ हैं, दरिद्रता के जीव से रौंदे गये मनुष्य नामक प्राणियों के घर हैं। भिक्षा से दिन का ग्रास पान। घर आकर उसे खाना और निश्चिन्त होकर सो जाना। उसते ही यथाविधि सारंगी या वयलिन लेकर चलना।

ऐसा एक घर मुहम्मद का भी था। उसने उसे खुद अपने हाथों बनाया था। अपनी स्वर्गीया पत्नी की याद में उसे बड़े प्रेम से अमीना महल कहकर पुकारता। वह स्वप्न

देखता। जब उसमान अपनी नव विवाहिता पत्नी को लेकर घर आएगा, तब उनके लिए एक अलग कमरा बनाऊँगा। बहु को अपनी ही बेटी की तरह बड़े प्रेम से इस तरह पालूँगा कि वह प्रार्थना करेगी - "या खूदा! ऐसे ससुर और पति मुझे जन्म में मिलें।" मुहम्मद की आत्मा के पंछी ने उसमान के अंतरंग में अपना घोंसला बनाया था। सारंगी बजाते बजाते उसमान को याद कर लम्बी साँस भरता। सोचता यह आसावरी बेटा गाता तो कितना अच्छा लगता... वह हिंडोल बेटे की ध्वनि में कितना फलता है, यह भैरव बेटे को कितना अच्छा लगता है।

थककर घर लौटता तो कभी-कभी मारे आदत के जोर से ऊँची आवाज में पुकारता "रे बेटे उसमान!" लेकिन उसमान का कलकत्ते में होना याद मन मसोसकर रह जाता। अपने घर की दीवारों को अलंकृत करने वाली उसमान के अभिनय की तस्वीरें ही उस पर छाया तथा शांति बरसाने वाली कल्पवृक्ष थीं। तस्वीरों को आँखें फाड़कर देखते हुए प्रेम, कौतूहल, गर्व, अनिरीक्षित भय, शोक आदि भावों से भरकर उन्हें इस तरह चूमता, मानों वह खुद उसमान को ही चूम रहा हो।

कभी सोचता - "किसी भी तरह एक बार कलकत्ता - जाकर बेटे के वैभव को देखकर आऊँ।" दूसरे ही क्षण राजवेश से भूषित होकर, ठाठ बाट से कीमती मोटर में बैठे हुए अपने बेटे की तस्वीर की ओर दृष्टि फेरकर सोचता "नहीं! अब वह राजकुमार है, और मैं एक भिखमंगा। मैं क्यों उसके यहाँ जाऊँ?... उसके दीस्त पूछेंगे कि मैं कौन हूँ, तो

उसे उत्तर देने में कितना संकोच होगा?" इन्हीं बातों पर बहुत सोचता रहा। हाँ! मैं भिखमँगा हूँ। तो क्या कलकत्ते जाने पर मेरा बेटा मुझे एक भिक्षुक समझकर ठुकरा देगा? लेकिन दूसरे ही क्षण अपनी मूर्खता को धिक्कारता हुआ हँस पड़ता।

उसमान को पिता को छोड़े छः वर्ष बीत गये थे। उसमान एक साल पहले तक पिता को बराबर पत्र लिखता, कभी-कभी थोड़े रुपये और अपने अभिनय की तस्वीरें भी भेजता, लेकिन अब उसने एकदम चुप्पी साध ली थी।" आज आ जायगा... कल जरूर आयगा... इसी सोच में पड़कर पत्र की प्रतीक्षा करते करते मुहम्मद चिन्ता से जर्जर हो गया था। कभी सोचता -"बीमार तो नहीं हो गया?" किसी भी तरह सोचने पर भी कोई उत्तर न मिल सका। पारसी कम्पनी के व्यवस्थापकों के नाम उसने चिट्ठी लिखी, लेकिन जवाब नहीं आया। मुहम्मद के दुख का अन्त न था। उसने निश्चय कर लिया कि किसी भी तरह कलकत्ते जाकर बेटे को देखूँगा ही।

जेब में थोड़े रुपये थे। उसमान के शादी करके घर आने पर उसकी पत्नी के लिए एक अच्छी साड़ी खरीदने और मकान बनवाने के लिए बड़ी मेहनत से पेट का अन्न काटकर उसने सौ रुपये संग्रह किये थे। आज उसका उपयोग करना पड़ा है। बिना उपयोग किये कोई दूसरा मार्ग नहीं। इसलिए मुहम्मद पचास रुपये और राह में भोजन के लिए आठ दस गेहूँ की रोटियाँ लेकर, उसी दिन रात को कलकत्ते के लिए रवाना हो गया।

कलकत्ता जैसे विशाल और समृद्ध नगर में गरीब मुहम्मद की कौन सुने? नया स्थान, नया वातावरण, साथ ही यह भय कि कहीं कोई पैसे चुरा न ले! शहर में घूम-घामकर थक गया। उसमान का पता बताने वाला कोई न था। आखिर उसे याद आयी कि उसमान एक पारसी कंपनी में शामिल हुआ है। तब वह कलकत्ते की पारसी कम्पनियों में उसमान को खोजता हुआ चला।

आखिरकार तीन दिनों की निरर्थक और विफल खोज के बाद उसमान की पारसी कम्पनी का पता लगा। मुहम्मद का हृदय उद्वेग से धड़कने लगा। मेरा बेटा मुझे पहचानेगा?... नहीं पहचानता तो?... कम्पनी के आँगन में प्रवेश करने को ही था कि अन्दर से एक मोटर मुहम्मद के सामने से चली गयी। अंदर बैठा हुआ व्यक्ति आँखों के आगे से गुजर गया। उसमान से बहुत मिलता-जुलता... वही न हो? अन्दर प्रवेश कर वहाँ के एक नौकर से उसने पूछा। इस वृद्ध व्यक्ति के प्रश्न में उसके उसमान से परिचित होने की झलक पाकर वह आश्चर्य से बोला- "जी हाँ, वही गवैया उसमान खाँ साहब हैं।" मुहम्मद के मन की आशा छलाँगें मारने लगी। वह बेहद खुश हुआ। पूछा- "अब कहाँ चले हैं?"

नौकर ने उत्तर दिया- "दिल्ली। कम्पनी भी वहीं गयी है। आज की रेल से खाँ साबह भी चले जाएँगे।" मुहम्मद के सिर पर वज्र का प्रहार सा हुआ। बदहवास होकर वह स्टेशन कर तरफ दौड़ा।

दिल्ली जाने वाली रेल के प्लाटफार्म पर मुहम्मद का पहुँचना था कि रेल स्टेशन छोड़कर चली गयी। मुहम्मद वहीं धरती पर धँस गया, वह पुकार उठा - "या खुदा! मुझ पर तुझे भी रहम नहीं।" उसकी पुकार आकाश को चीरते हुए अनन्त में विलीन हो गयी।

दिल्ली के प्रवास को पूरा कर पारसी कम्पनी कलकत्ता लौटी। प्यारी पर तब तक अन्य नटों के मन में जो जलन थी, वह अब स्पष्ट होने लगी। नटों के असंतोष का समाधान करने के लिए व्यवस्थापक आतुर हुए। प्यारी और उसमान के बर्ताव से सारा कलकत्ता नगर आश्चर्य चकित हो गया। उसमान जब तक अपनी अमानुषीय गान कुशलता से लोगों का मनोरंजन करता था, तब तक जनता उनके विचित्र बर्ताव पर ध्यान नहीं देती थी। लेकिन अब.. गले की सम्पत्ति का हास होने पर अभिनय में बेहद स्वेच्छाचार होने पर... मानवीय मर्यादा का उल्लंघन अभिनय करके, बेहद शराब पीकर, प्यारी के गले में बाँहें डाल रास्तों में घूमने लग जाने... उसका गौरव भी कम होता गया।

पहले प्यारी- उसमान के जिन नामों ने कम्पनी को लाखों रुपये दिलाये थे, अब उन्हीं के कारण कम्पनी का खर्च पूरा होना भी दूभर हो गया। व्यवस्थापकों ने परिस्थिति की विषमता को लक्ष्य कर नायिका दोनों को कम्पनी छोड़कर चले जाने का नोटिस दे दी। उसमान अब सचमुच चिन्ता में पड़ गया। अभी वह सोच ही रहा था कि प्यारी अपनी पुरानी

कम्पनी में फिर से शामिल होकर उसमान को बिलकुल भूल गयी।

उसमान की आँखें खुली। अपनी स्थिति का अब उसे अनुभव हुआ। कमाये हुए हजारों रुपये उसने प्यारी के सुख के लिए दिल खोलकर खर्च किये थे। आज प्यारी लक्षाधिपति है, लेकिन वह पहले का भिखमंगा। पहले का अपना सुरीला गला भी वह खराब कर चुका था। देह भी दुर्व्यसनों में पड़कर नाद रहित बाँसुरी की तरह क्षीण हो चुका था। आँखें, गाल। हृदय का पिंजरा सब दुर्बल हो गये थे और वह अंतिम संस्कार के लिए तैयार शव की तरह बन गया था। अन्दर के इस खोखलेपन के कारण उसमान अंतरंग से निराश्रित था... और अब बाहर के सौभाग्य को गँवाकर बाहर से भी निराश्रित बना।

यह आघात उसे एक भूल से दूसरी भूल की ओर ले चला। छोटी-मोटी कम्पनियों में शामिल होकर वेश्याओं के संग मद्यपान करते हुए वह अपने पतित जीवन के गाने को पूरा करने का प्रयत्न करने लगा। नाविक की खोई हुई नाव की तरह उसका जीवन आँधी के प्रचण्ड झोंको में फँस गया था। इसके परिणाम स्वरूप उसे शल्य चिकित्सा का आश्रय लेना पड़ा।

शल्य चिकित्सा पूरी करके उसमान सार्वजनिक अस्पताल के बाहर आया है। उसकी बाहरी निराश्रिता नहीं गयी है लेकिन अंदरूनी निराश्रिता कुछ कम हुई है। वैद्यशाला में उसके बगल के एक बिस्तर पर एक छोटा सा बीमार बालक

था। उसमान ने उसके माता-पिता को उसकी सतत सेवा करते हुए देखा था। इस दृश्य ने उसके अंतकरण में छिपी हुई कई पुरानी बातें जगायी थीं। आज से पहले अपने जीवन में घटी हुई घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं।

उसे याद आया कि कितना सरल, सद्गुणी सुकुमार था और उसे याद आया अपना पिता। उसकी ममता, माँ को खोए हुए पुत्र का पालन करने की रीति, थोड़े से भी श्रम से उसमान के थक जाने पर भय से उस बुढ़ापे में भी सब काम अपने ही हाथों करने की उदारता, उसमान के हित के लिए सब कुछ अर्पण करने का निष्काम प्रेम ! सब याद करके वह बच्चे की तरह रोने लगा। बीच बीच में उसके मुख से रुककर आवाज आती- "दादा ! दादा ! दादा!" उसने जाना कि दुःख के आगे वह कितना नादान शिशु है। दुःख के आवेग में रोते रोते उसकी आँखें लाल हो गयीं थी, लेकिन हृदय पर से मानों एक बहुत भारी बोझ उतर गया था।

उसने सोचा कि गाँव लौटकर पिता की चरण धूलि माथे पर चढ़ाऊँ। लेकिन अपनी हालत पर उसे शरम आयी। सोचा। 'बाप समझता होगा कि बेड़ा बड़ा धनवान हुआ है, लेकिन मैं ऐसी हालत में मुँह कैसे दिखाऊँ? लेकिन... वह आखिर पिता तो है... जब मैं एक अनाथ शिशु था, तभी से मुझे पालने पासने वाला पिता... प्रेम का धन का पर्दा क्यों रहे, मन में यह विचार स्थिरकर उसमान अपने गाँव चला।'"

मुहम्मद किस तरह गाँव पहुँचा, यह तो वही जाने। रेल से उतरते ही निशक्त होकर वह गिर पड़ा। पहले से ही दुख

से जीर्ण देह बेटे को न देख सकने के दुख को सह न सकी। कुछ दयावान व्यक्तियों ने उसे उठाकर सार्वजनिक अस्पताल में भर्ती कराया। उसके व्यावसायिक बन्धु कभी कभी उसके पास बैठकर उसे सान्त्वना दिलाते। देह में रहने की इच्छा न होते हुए भी, उसकी आत्मा देह छोड़कर जाने में हिच-किचाते हुए, मुहम्मद को बहुत सताने लगी। हृदय के रोग की दवा प्रेम ही है। चिकित्सकों ने निराशा से सिर हिला दिया।

निद्रा में, सुषुप्ति में, जागृति में मुहम्मद की सिर्फ एक ही रट थी "उसमान!.... मेरा बेटा!... ऐसी पीड़ा से पीड़ित होते हुए भी उसने दयामय खुदा" को न भुलाया। प्रार्थना करता - "या खुदा! मुझे अपने पास बुलाते तो... लेकिन पुत्र के मोह को क्यों रख छोड़ा?" दूसरे ही क्षण आप ही हँसकर सोचता- "शायद यही दिखाने कि बेटा भी खुदा ही है।"

एक वैद्य ने कहा कि हृदय दुर्बल है... दूसरे ने कहा कि फेफड़ा खराब है। लेकिन सब एक बात पर राजी थी कि उसे क्षय हो गया है। दवा पिलाने नर्स आती तो उसके हाथ पकड़कर मुहम्मद कहता - "बेटी, मुझे यह दवा क्यों देती हो, एक बार उसमान को बुलाओ। उसके देखकर बेफिक्री से यह यात्रा खतम करूँगा।" फिर दीनता भरी दृष्टि से नर्स मन को दया में डबो देता।

एक दिन प्रातःकाल बादल घिरे न थे, लेकिन आकाश में हर्ष का कोई चिन्ह नहीं था। एक तरह की गम्भीरता का भीतर सौन्दर्य फैला हुआ है। मुहम्मद सुबह की नमाज में मग्न

है। उसके सरल हृदय से निकलने वाली प्रार्थना में मिलकर और दी व्यक्ति घुटने टेककर सामने बैठे हैं। मुहम्मद के मुँह से एक अपूर्व आभा झलकी रही है। अंतरंग की शान्ति का प्रतिबिम्ब उसके मुँह पर है। प्रार्थना खत्म कर, नौकर की सहायता से धीरे धीरे बिस्तर पर - बैठकर, पास खड़े हकीम से उसने कहा - "हकीम जी!... आज मेरे खुदा ने कहा है।"

"क्या, खाँ साहब?"

"मैं... मैं अपने बेटे को देखूँगा।"

"हाँ, खाँ साहब!"

"क्या, यह सच है, हकीमजी?... तो क्या मैं उसमान को जरूर देखूँगा?"

"हाँ, देखेंगे, खाँ साहब!.. मैं ही उनको बुलाकर लाता हूँ।"

'कहाँ? कहाँ?.. जल्दी बुलाइये।'

"इतनी उतावली न कीजिये, खाँ साहब! मैं वादा करके फिर चूकने वाला नहीं। आप जरा चाय पीजिये। मैं उनको बुला लाता हूँ।"

चाय के प्याले को हाथ में लेकर, थोड़ा पीने के बाद मुहम्मद ने सिर उठाया। सामने खड़ा हकीम न था, कोई अपरिचित था। मुहम्मद ने आँखें मलकर उस व्यक्ति को घूरते हुए पूछा- आप कौन हैं!"

"मैं कौन हूँ?"

उत्तर देने वाले व्यक्ति के पीछे अपने एक व्यावसायिक बन्धु को खड़ा देखकर मुहम्मद ने सोचा ने शायद उसका कोई दीस्त होगा। लेकिन हृदय न जाने क्यों धड़क रहा था।"

वह अपरिचित फिर से बोला- "खाँ साहब!"

"जी!

"दा... दा....

उसकी आवाज याद आयी। उसे घूरकर देखा।

"बेटा!... आ गये!"

सिर्फ इतनी बातें उसके मुँह से निकल पायीं। बाप बेटे लिपट गये। थोड़ा समय हुआ। उसमान के साथ आने वाले ने दोनों को अलग मुहम्मद को बिस्तर पर लिटाया। उसमान ने पिता के पास बैठकर उसकी दाढ़ी को चूमा, उसके मुँह पर धीरे धीरे हाथ फेरे और आँसुओं को अपने कुर्ते के छोर से पोंछा। फिर बोला - "दादा! आखिर तुम्हें देख तो पाया।"

"बेटा! आ गये! आओ, मुझे छाती से लगा लो। खुदा तुम्हारा भला करे। मेरी अमीना.. आज जिन्दा होती तुम्हें देखकर..'

उसमान ने पिता को छाती से लगा लिया। थोड़ी देर बाद उसने घबराकर देखा वही स्मित, शान्त बदन वही सरल निष्काम प्रेम का लीलानाट्य- लेकिन.... पंछी उड़ गया था ।

"दादा! दादा! दादा!" उसमान पिता की निश्चल देह पर गिर पड़ा।

कहीं से "बेटा! उसमान! खुदा!" की प्रेम परिपूर्ण प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी।

~@~

6. पाँचवाँ बेटा

लेखिका: नासिरा शर्मा

लेखिका परिचय:-

नासिरा शर्मा 1948 में इलाहाबाद में जन्मी नासिरा शर्मा हिन्दी कथा साहित्य में महत्त्वपूर्ण नाम है। उन्होंने फारसी भाषा और साहित्य में एम। ए। तक शिक्षा ग्रहण की है। हिन्दी सहित उर्दू, अंग्रेजी और पशतों भाषा साहित्य की जानकार नासिरा शर्मा ने ईरान, इराक, अफगानिस्तान और पाकिस्तान के साहित्य, राजनीतिक परिवेश और बौद्धिक हलचलों पर पर्याप्त विमर्श और नियमित लेखन किया है।

प्रमुख रचनाएँ: उपन्यास: सात नदियाँ-एक समुन्दर शाल्मली, ठीकरे की मँगनी, जिन्दा मुहावरे, अक्षयवट, कुइयाँजान और 'जीरो रोड' कहानी संग्रह 'शामी कागज पत्थर गली', इब्रे मरियम, संगसार, सबीना के चालीस चोर, खुदा की वापसी, दूसरा ताजमहल, इनसानी नस्ल, बुतखाना। रिपोर्टाज: 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं। लेख संग्रह: राष्ट्र और मुसलमान, औरत के लिए औरत। नाटक - दहलीज, प्लेटफार्म नं. सेवेन। आलोचना: किताब के बहाने, राजनीतिक-सामाजिक अध्ययन, अफगानिस्तान: बुजकशी का मैदान, मरजीना का देश इराक।

नासिरा शर्मा सामाजिक विषमताओं को दैनंदिन घटनाओं और अपने आसपास के पात्रों के माध्यम से उभारने में पारंगत हैं। यही उनका रचनात्मक वैशिष्ट्य है।

अमतुल पर सुबह से झुंझलाहट सवार थी बात-वे-बात वह चीजें पटककर अपना गुस्सा उतार रही थीं। अब गुसलखाने की मुँडेर पर बैठा काँव-काँव करता कौआ उनको तैश दिला गया और आव देखा न ताव, पैर की जूती निकाल जोर से निशाना साधा... चल-मर कमबख्त! बेसुरे राग अलापने को मेरी ही मुँडेर मिली थी तुझे! कौआ चोट खा नीम के पेड़ पर जा बैठा; मगर काँव-काव नहीं छोड़ी और न अमतुल ने उसका कोसना ।

पिछले कई दिनों से अमतुल को फिक्र लगी थी कि मोहर्रम का महीना सिर पर है और काम करने वाले रहमान का कहीं पता नहीं है। बात इमामबाड़े की न होती तो वह सज्जन या सूरज, किसी को भी बुला लेतीं। माना कि आने वाले महीने लपलपाती धूप के होंगे, मगर बादलों का क्या ठीक, कब वरसा दें रहमत की बारिश और अमतुल का सारा बदन इस खयाल से गनगना उठा कि सजे ताजिया और अलम का क्या हाल होगा पानी से भीगकर?

"अत्तो खाला..." खुले दरवाजे की कुंडी खड़क उठी।

अमतुल की बेताब नजरें टाट के झूलते परदे की तरफ उठीं, जहाँ पर एक ही साया खड़ा नजर आया। चेहरे की खुशी पल भर में निराशा में बदल गई। तो भी बेताबी से पूछ बैठी, "मिला था रहमान?"

"मिला था, खाला, कुँवर साहब के यहाँ चिनाई का काम करवा रहा है। बोला, फुरसत नहीं है।"

"बौरा गया है क्या?"

"अब वह ठेके पर काम लेने लगा है। उसके नीचे पाँच बेलदार काम कर रहे थे।"

"तुमने बताया था कि इमामबाड़े की छत की हालत ठीक नहीं।"

कहा था, खाला, वह तो छाता लगाए कुर्सी पर बैठा था। पान चबाने उसे फुरसत कहाँ थी जो जवाब देता। सच जानो, हमको बहुत बुरा लगा। अब हम उसे बुलाने दोबारा नहीं जाएँगे।"

अमतुल के चेहरे पर बेबसी के बादल घिर आए। दिल में हूक उठी कि चार पहाड़ से लड़के जनकर भी उन्हें कौन-सा सुख मिला। किसी भी लड़के को न माँ की फिक्र है, न दीन व मजहब की, बस नौकरी करे जा रहे हैं। महीने में भेजे मनीऑर्डर क्या मेरा अकेलापन दूर कर सकते हैं? क्या इस रहमान बेलदार का दिमाग सीधा कर सकते हैं जो सै बार बुलाने पर भी न आया?

"देखो खाला, चिन्ता की बात नहीं, हम काम करने को तैयार हैं। जब जरूरत पड़े, बुला लेना।" इतना कहकर सुलाखी चला गया। वह इससे ज्यादा कुछ कह भी नहीं सकता था। उसे बचपन से पता था कि खाला को उसका पड़ोस भाता है, मगर इमामबाड़े में हाथ लगवाना अच्छा नहीं लगता है।

अपने में कुढ़ती अगतुल छुट्टे पाजामे में हिलाती-डुलती इमामबाड़े की चौखट पर पहुँची और उसके किवाड़ खोले। चूहों ने बल्लियों में घुड़दौड़ मचा कुछ मिट्टी के टुकड़े नीचे

गिराए। कमरे की पत्ती जला उन्होंने सूने इमामबाड़े को देखा। तख्त पर मिट्टी के ढेलों के साथ चूहों की गन्दगी पड़ी थी। कोने से फूल झाड़ू उठा, उन्होंने तख्त बटोरा और कूड़ा कागज के टुकड़े में उठा चूहों को जी भरकर सलवातें सुनाई-झाड़ू फिरे, जाने क्या कुतरने यहाँ आते हैं। चालाक ऐसे कि चूहेदानी की रोटी देखें मुँह फेर लें।

अमतुल को अरमान था कि इमामबाड़े और दालान की छत पक्की हो जाती। पहले हाथ तंग था, ऐसी बातें सोच नहीं सकती थीं। लड़कों ने हर बार माँ से वायदा किया, मगर पिछले पाँच वर्षों में कोई भी ऐसे मौसम में माँ से मिलने नहीं आया, जब छत डाली जा सकती थी। बात अगले मौसम के लिए टल जाती थी। इस बार खुद हिम्मत की तो निगोड़ा रहमान वेलदार ठेकेदार बन बैठा। कैसी अनहोनी सुनने में आती है। चारों तरफ अरसे से ऐसी कोई बात उनके कान में नहीं पड़ी जो मुनासिव लगती और जिसको सुनकर उनका जी खुश हो जाता।

कमरे का दरवाजा बन्द कर, कुंडी लगा अमतुल बाहर आई। कूड़े की पुड़िया फेंक हाथ धोने बैठी तो उँगलियों पर हिसाब लगाया कि अब तो मरम्मत का वक्त भी नहीं बचा है। हिसाब से मोहर्रम के चाँद को परसों हो जाना चाहिए। हाथ पाँछ दालान के कोने में रखा लकड़ी का बड़ा बक्स खोला और धूप में पड़े खटोले पर बक्स से निकाली गठरी खोल दी। पगड़ी, पटका, चादर, सफेद मलमल पर फैला दी। अब अमतुल का दिल इमामबाड़े की सजावट की तरफ मुड़ गया

था। मन-ही-मन उन्होंने फैसला ले लिया था कि जब वह किसी के आसरे बैठनेवाली नहीं हैं, खुद चूना भिगोएँगी और जहाँ तक हाथ जाएगा, कमरा पोत लेंगी। आखिर सरफराज की लड़कियों ने मिल जुलकर पिछली मोहर्रम में पूरा घर नहीं पोत डाला था!

मोहर्रम का चाँद हो गया था। औरतों ने चूड़ियाँ बढ़ा, नाक की कील छोड़कर कान, गले, पैर, हाथ के सारे जेवर उतार दिए थे। तसलों में हरा-काला रंग घुल गया था, जिसमें कपड़े रँग-रँगकर अलगनी पर फैलने लगे थे। अमतुल की मदद करने बड़ी बहन शाहेदा की पोती रौनक कानपुर से आ गई थी। अब दोनों दादी-पोती इमामबाड़े को धो-पोंछकर तख्त पर बिछी सफेद चादर पर जरी रख रही थीं। उसके छोटे दरों और खिड़कियों पर कुमकुमे लगा रही थीं।

लकड़ी के डंडे पर उभरी खूंटियों पर अलम लगा उसकी गरदन पर पटका लगाते हुए पोती ने दादी से पूछा, "दादी, जापने यह सब बनाए हैं?"

कभी दादी जवान थीं, पटापटी, लाली लचके का काम चुटकियों में कर डालती थीं। अब की लड़कियों को न कोई शौक है, न उमंग, बस किताबें खोले बैठी रहती हैं।

चाँदनी रात थी। इमामबाड़ा सजना जरूरी था। उसके बाद मातम होना था, जिसके लिए उन्होंने सलमान हलवाई के यहाँ से दो किलो बालूशाही दोपहर को ही मँगवा ली थी, वरना शाम तक तो उसकी दुकान पर लूट मच जाती है। मक्खियों तक को मिठाई का दाना नसीब नहीं होता हैं।

पटकों और ताबूत की चादर में इत्र लगा अमतुल ने सजे इमामबाड़े को नजर भरकर देखा और कमरे से बाहर निकल दरवाजा भेड़ दिया। अब दालान में फर्श बिछाना बाकी था। काम से निबटकर दोनों ने खाया। फिर अमतुल ने पानदान खोल मुने नारियल, छालिया, धनिया और लौंग की पुड़िया बाँधनी शुरू कर दी। दो माह न सही, कम-से-कम दस दिन तो आदमी हुसैन का गम मनाए और पान से होंठ मुँह लाल न करे। पुड़िया बाँधते-बाँधते अमतुल को एकाएक ध्यान आया कि कहीं बादल टप-टप बूँदें बरसाने आ गए तो? घबराकर आसमान ताका। उस पर तारे खिले अमतुल अपने इस तरह हौलने पर खुद हँस पड़ीं याद आया उनको अपने मियाँ का कहना, 'बहुत सोचती हो तुम, अमतुल! जो नहीं है उसको भी देख लेती हो।"

"दादी, मैं तैयार हूँ।" चोटियाँ गूँथ पोती बोली।

"बस, उठती हूँ," कहकर अमतुल ने नन्ही-नन्ही पुड़ियों से भरी छोटी-सी पीतल की ट्रे उठाई और दालान में बिछे फर्श के बीचोबीच आने वाली बीवियों के लिए रख दी।

टॉर्च लेकर दोनों दादी-पोती घर से निकलीं सुलाखी बेलदार घर के सामने से गुजरती हुई जब ज्योति कहारिन के घर के पास पहुँची तो उन्हें आता देख रमजान के इक्के की घोड़ी हमेशा की तरह जोर से हिनहिनाई और इससे पहले कि अमतुल अपना छुट्टा पाजामा समेटतीं, उन पर पेशाब की छीटें पड़ चुकी थीं। दोनों दादी-पोती खिसियाई पर लौटी और आधा धड़ 'गोता' कर दूसरे कपड़े पहन फिर निकलीं।

इस बार सीधे न जाकर पानी की टंकी के पीछे से चक्कर काट बतूल बेगम के घर पहुँचीं। मातम जोरों पर था। “हाय हुसेन” की आवाज बाहर तक आ रही थी। जब वे आँगन में पहुँचीं तो दूसरा नौहा शुरू हो गया था। वे दोनों भी जाकर खड़ी हो गई और लय में लय मिलाने लगी।

आग बरसाती दीपहर में हरा-काला कपड़ा पहने औरतें, बच्चे, लड़कियाँ एक घर से दूसरे घर मजलिस में शरीक होतीं। औरतें पसीना और आँसू पोंछती, फिर बर्फ का पानी लेकर पंखे में लेट जातीं। कमर सीधी कर फिर अगली पड़ोसिन के घर जमा होती, भर्पाए गले से बातें करतीं। पाँचवी मोहर्रम तक आवाज इस काबिल नहीं रह जाती थी कि सुननेवाला मर्द-औरत की पहचान करता। फिर बात भी अहम थी कि साल भर में यही एक मौका था जब औरतें खुलेआम, ढलती रात को घर वापस आतीं, आपस में मिलकर दुखड़े कहतीं और सुनातीं। जब हदीस शुरू होती तो कर्बला के दर्दनाक बयान को सुनकर उनके अन्दर दबा दर्द का लावा फूट पड़ता। हुसैन के नाम पर जानू पीट-पीटकर रोती और वह सब कुछ आँसुओं में बहा देती, जो साल भर से अंधा कुआँ समझ अपने दिल में डालती रही थीं।

आज नवीं मोहर्रम थी अमतुल आज के दिन खान पर पाँच बख्श की नजर करवाती थीं। सुबह से हलुआ, पुलाव, कबाब, कोरमा पकाने में लगी थीं। शीरमाल और खमीरी रोटी के लिए वह नानबाई को कहलवा चुकी थीं। गरमी के तपते महीने में बावर्चीखाने में पसीने से डूबी अमतुल सूजी

भून रही थीं कि एकाएक ठंडी हवा का झोंका सारे बदन में सिहरन भर गया। अमतुल ने राहत की साँस ली। मगर जब यह हवा बराबर उनके पसीने को सुखाने लगी तो उन्होंने मुड़कर देखा, शाम उतर आई थी। सात बजे नजर होगी। उनके हाथ जल्दी से पतीली में पड़ी कफगीर को घुमाने लगे तभी बिजली-सी चमकी और बादल गरजा।

"इलाही खैर करना," गरम पतीली चूल्हे पर से उतार अमतुल जले पैर की बिल्ली की तरह बदहवास दर पर आन खड़ी हुई। दीपहर की गर्मी और फिर अंधड़ ने जाने कहाँ से काले काले मेघ बुला लिये थे अमतुल को काटो तो खून नहीं एकटक आसमान को ताकती खड़ी रह गई। अन्दर से हर धड़कन जैसे पूछ रही हो अब क्या होगा? अब क्या होगा?

"आज का दिन गुजर जाने दी, माबूद... कल जितना चाहे, बरसना। आज नबी की शब है। हुसैन एक दिन के मेहमान हैं। कल सुबह तो इमामबाड़ा बढ़ाना है... तुझे तेरे प्यारे हुसैन की प्यास की कसम है।" कहती हुई अमतुल वहीं आँगन में दोजानू हुई, फिर सिजदे में गिर गई।

'टप-टप' मोटी-मोटी बूँदें उनके काले टुपट्टे से ढके सिर और पीठ पर गिरने लगीं। अमतुल तड़पकर उठी और शिकायत भरी नजरों से उन्होंने आसमान को ताका। खामोशी पल भर में आँसू बन आँखों से टपकने लगी। मूसलाधार बारिश को खड़ी ताकती, हारी सी अमतुल में इतनी ताकत नहीं थी कि वह अन्दर इमामबाड़े को खोलकर देखती कि बारिश की बूँदें अन्दर दाखिल हुई हैं या नहीं।

बादल की गरज और बिजली की तड़प से बच्चों के दिल दहले जा रहे थे। बड़ी-बड़ी बूँदें तो पक्के मकान के प्लास्टर उखाड़ देती, यह तो फिर गरमी-सर्दी सहे बोसीदा मकान था जिसकी मिट्टी को गलते-बहते कितनी देर लगेगी। दालान में टपकते हिस्सों के नीचे पतीली रख अमतुल को जितनी दुआँ मुसीबत की घड़ी टालने वाली याद थीं, वह पढ़ रही थीं। भय और अपमान के आसपास से अधमरी आवाज गले से बड़े मद्धिम सुरों से निकल रही थी। पोती दोनों तकिए कानों पर लगाए बिजली की चमक से खौफजदा बिस्तर पर औंधी पड़ी थी। बादल के घड़घड़ाने के बीच अमतुल को एकाएक लगा, जैसे उन्हें किसी ने पुकारा हो।

"अत्तो खाला! ओ असो खाला!..

"हाँ-हाँ, कौन है भाई?" दुआ जल्दी से खत्म कर उन्होंने खड़े होते हुए पूछा।

"हम सुलाखी! इमामबाड़े की छत पर तिरपाल डाल रहे हैं। इधर से दबा दिया है। इधर से खम्भे में बाँधना है। अब परेशानी की कोई बात नहीं है।"

'सुलाखी, इमामबाड़े की छत पर!' अमतुल के सारे बदन के रोंगटे खड़े हो गए। मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाई, "यह क्या कर डाला इस सिरफिरे ने ! मेरी मिट्टी पलीद कर दीन दुनिया तबाह कर डाली।"

"चलो, एक चिन्ता ती खत्म हुई।" सुलाखी ने दूसरी तरफ से निवटकर कहा। फिर हाथ आकाश की ओर

उठाकार जोर से चीखा, "खूब बरसो झमाझम ऊपर वाले प्यासी धरती दुआ देगी।"

"तू क्यों चढ़ा था वहाँ? किसने कहा था?" अतुल पर गुस्से का दौरा पड़ चुका था। सुलाखी जो इधर उत्तरता तो कौए की तरह उसे एक नहीं, दी चप्पलों की चोट याद आ जाती; मगर वह छत पर खड़ा छोटे से इमामबाड़े को भीगने से बचाने की कोशिश में जुटा पानी-बिजली से मुकाबला कर रहा था। उस तक अमतुल की आवाज नहीं पहुँच रही थी।

तूफान घंटे भर बाद ठहर गया, मगर अमतुल का दिल शंकाओं से भर उठा। सारी रात पलक नहीं झपकी। पाक-नापाक का वसवसा उन्हें बुलाने पर तुला था। अल्लाह-अल्लाह करके पौ फटी, मगर बूँदाबाँदी नहीं रुकी। इमामवाड़ा बढ़ाना था। अशूरे का दिन था। चूल्हा जलना नहीं था, न हलक में कुछ उतरना था। कब तक और कितनी दुआएँ पढ़ती अमतुल, सो मजबूर होकर इमामवाड़ा बढ़ाने उठीं। दस बजे ताजिया दफन होना है। सुलाखी की नादानी और अपनी मजबूरी खुदा से कहती इमामबाड़े तक पहुँची और इस खयाल से उन्होंने दरवाज खोला कि कमरे में घुटनों तक पानी भरा होगा। जरी भीगकर उसमें तैर रही होगी और पटका, अलम भीगा पोचा खूँटियों से लटक रहा होगा। उन्होने बन्द आँखे खोली और धक से रह गई... लोबान की महक से इमामबाड़ा भरा था। आलम जगमगा रहे थे। पटके सूखे थे। जरी को पत्नियों उसी तरह सही सालिम झिलमिला रही थी। अमतुल गदगद हो उठीं। इमामबाड़े को बलाएँ ले

हाथों की उँगालियाँ कनपट्टी के पास से जाकर फोड़ी और जरी को चूमकर बोली, "मौला तेरी कुदरत के सदके! तूने अपनी इल बन्दी की लाज रख ली।"

"दादी! वंडरफुल दादी! सुलाखी के तिरपाल ने सब कुछ बचा लिया। पोती इमामबाड़े में दाखिल हो खुशी से चहकी, क्योंकि पानी से भरी पतलियों को फेंकते-फेंकते वह कल से बोर हो चुकी थी।

"उस नामुराद का नाम मत लो मेरे सामने!" अमतुल ने पोती को झिडका। उनका दिल खुदा के कहर से सहमा हुआ था। बन्दों को गलतियों को सजा तो ऊपरवाला देता है।

"दादी, एक तो उसने काम किया और आप हैं कि.."
पोतों ने मुरझाए गजरोँ को उतारते हुए हैरत से कहा।

"तुम अपने बाप वाली बातें मुझसे न करना।... दोस्ती, प्यार अपनी जगह दीन-ईमान अपनी जगह।" अमतुल ने जरी पर पडी खाक को कागज पर समेटते हुए कहा।

"आपका गुस्सा रहमान पर है या सुलाखी पर?" पोती ने पटके तह करते हुए पूछा....

"दोनों पर।"

"यानी कि एक की नेकी और दूसरे की लापरवाही को आँकने का आपके पास एक ही पैमाना है, दादी?" पोती ने हैरत से पलकें झपकाई।

"पैमाना मेरा बनाया हुआ नहीं है, बल्कि पुरखों के वक्त से चला आ रहा है।"

"दादी, अब इस दौर में पेट की वजह से रहमान अगर कुँबरपाल के घर काम कर रहा है तो सुलाखी हर हाल में आपके घर का काम करेगा, इस हकीकत से आप कैसे आँख बन्द कर सकती हैं?"

"तभी तो जमाने में आग लगी है, जो हर धान सत्ताईस रुपए सेर बिक रहा है।" अमतुल ने बात खत्म करने के लहजे में कहाँ पोती ने दादी का चेहरा देखा और मुस्कुराकर मलमल की गठरी बाँध लकड़ी के बड़े बक्स में रखा। सूखे गजरोँ का थैला इमामबाड़े की चौखट पर रख अमतुल ने गहरी साँस ली।

दूर गली से अलविदाई दस्ते से गुजरने को आवाज नजदीक आती सुनाई पड़ी। अमतुल की आँखें भर आईं। आज हुसैन पर से रुखसत हो रहे हैं। सूखे गजरोँ का थैला उठा यह दरवाजे तक आई कि कर्बला जाने वालों के हवाले यह कर दे, ताकि ताजिया के साथ यह भी दफन हो जाए।

दस्ता गुजर जाने के बाद हर साल की तरह ननकू पासी, भोला जुलाहे और ज्योति कहारिन के घर की औरतें-बच्चों के लिए 'खाक' लेने पहुँच गई। अमतुल ने पुड़िया खोल चुटकी भर-भरकर लोबान और अगरबत्ती का गुल उनमें बाँटा, जो किसी ने बच्चे को चटा खुद माथे-सीने पर लगाया, किसी ने उसे कागज पर सँभाला।

"सुलाखी के बेटवा के लिए भी दे देव, खाला" ज्योति कहारिन की बहू बोली।

"क्यों? उसके बहू के पैरों में मेहँदी लगी है क्या?" रूठे स्वर से अमतुल बोली।

"खाला की बात।" बूढ़ी पासिन हँस पड़ी।

"अरे खाला, उसका हाल-बेहाल है। रात को कहर टूटा था। उसी में भींग गया। जाने कहाँ काम पर गया था। अब बुखार से तप रहा है।"

"कहती तो ऐसे हो जैसे चना डाल दो तो भुन जाए।" कहने को सख्त बात अमतुल कह गई, मगर चढ़ी तेवरी ढीली जरूर पढ़ गई। मगर दिल में एकाएक हौल समाई कि कहीं सुलाखी को 'बेअदबी' की सजा तो नहीं भुगतनी पड़ेगी। पोती ने गहरी नजरों से दादी को ताका, जहाँ तनी कमान टूटने का भाव नाच रहा था। औरतें 'खाक' लेकर चली गई। उनका विश्वास अमतुल के इमामदाड़े पर है। उसके इमाम पर भी है, तभी तो वह मन्नतें माँगती, चढ़ावे चढ़ाती मगर अमतुल..? अमतुल ने घबराकर पोती की तरफ देखा, फिर सिर झुका लिया। उनके चेहरे पर पीलापन उतर आया था।

दिन निकल आया था धूप भी खिल उठी थी। उमस गजब की थी। कर्बला से मर्द घर लौट आए थे। हुसैन की शहादत का दिन था सुबह से सब विना खाए-पिए थे। चूल्हा भी ठंडा पड़ा था। अमतुल ने पड़ी देखी, नौ बज रहे थे। दुआ की किताब बन्द कर उन्होंने बावर्चीखाने का रुख किया। काली मसूर की भीगी दाल को चूल्हे पर चढ़ा चौलाई का

साग काटने बैठ गई। पोती भी सुस्त सी आकर चावल धोने लगी।

"दादी, सबके घर आज के दिन यही खाना क्यों पकता है?"

"तुम सवाल बहुत पूछती हो" कहकर अमतुल ने साग छौंका।

"समझ गई, पुरखों के जमाने से चला आ रहा होगा।"

ठंडी साँस भर पोती धीरे से बोली।

अमतुल किसी गहरी सोच में थीं। उन्हें भी तो एक सवाल बचपन से परेशान करता रहा है कि दसवीं से सारे दिन भूखे रहने के बाद हुसैन की शहादत के बाद खाना क्यों चार बजे खाया जाता है? कायदे से तो शहादत के बाद फाका करना चाहिए। मगर इस सवाल को पूछने की हिम्मत उनमें नहीं थी, अब एक नया सवाल उन्हें मथ रहा था।

'सुलाखी ने पड़ोसी का फर्ज निभा दिया। इमामबाड़ा भीगने और बरबाद होने से बच गया न, यह तो खुश होने वाली बात है, फिर में क्यों अनहोनी से डर रही हूँ?"

दोपहर ढल रही थी। दस्तरखान पर तीन डोंगे और दो तश्तरियाँ रखी हुई थी। दादी-पोती आमने-सामने बैठी थी। अतुल को जाने क्यों सुलाखी याद आ रहा था। प्लेट में खाना निकाल जैसे ही पहला लुकमा तोड़ा तो कान बज उठे - 'खाला, अत्तो खाला! अब परेशानी की कोई बात नहीं है।

बचपन में सुलाखी की माँ और अमतुल में बड़ी दोस्ती थी। चचा के घर शादी हुई, सो मायका ससुराल एक घर में रहा और बिनती का साथ न छूटा, जो उनके पर सुबह से रात तक जमी रहती थी। बिनती व्याह के साल भर बाद जब

विधवा होकर मायके लौटी तो फिर गुइँयापा दर्द का रिश्ता बना बैठा। जब बिनती को साँप ने काटा, उस वक्त सुलाखी छह महीने का था।

उनकी गोद भी हरी थी। रात को जब बिनती की चिता ठंडी पड़ी तो हलकान होते सुलाखी को वह नहीं देख पाई थी और बिना सोचे-समझे गोद में लिटा उसका पेट भरा था। अपने बेटे का पेट काट वह रात को सुलाखी को गोद जरूर लेती; मगर गरीब का बेटा जल्द ही रोटी खाना सीख गया। बिनती के मरने के बाद यह भी विधवा हो गई। कस्बे के स्कूल में पढ़े चारों लड़के शहर में नौकरी पा गए और वहीं के गए। अब हाँके-पुकारे को बचा था सखी का लड़का सुलाखी... मुँह की तरफ बढ़ा निवाला वापस अमतुल ने प्लेट में रख दिया। उनका दिल बिगड़ने लगा। कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं, फिर बटुआ बक्स से निकाल पुड़िया ले आगे बढ़ी।

"खाना छोड़कर कहाँ जा रही हैं, दादी?" भूखी पोती मिनमिनाई।

"तुम खाना खाओ, मैं अभी आई।"

सुलाखी के घर की चौखट पर जब अमतुल पहुँची तो उसके माथे पर ठंडे पानी की पट्टी उसकी पत्नी रख रही थी। पास के खटोले पर कथरी पर उसका बेटा मुँह में चुसनी लगाए सो रहा था।

"खाला, तुम यहाँ!" चीक उठी सुलाखी की पत्नी।

"बुखार तो बहुत तेज है।" अमतुल ने माथे पर हाथ रखा।

अमतुल कुछ देर खड़ी रहीं, बेचैन, परेशान सी, फिर कुछ सोचकर उन्होंने खाक की पुड़िया निकाल उसे चुटकी में भर, सुलाखी के माथे और सीने पर लगा, उसका बाजू पकड़ मुँह-ही मुँह में कुछ दुआ पढ़कर दम ली। फिर धीरे से बोली, "अल्लाह ने चाहा तो बुखार फौरन उतर जाएगा।"

"सुबह से दो बार चक्कर लगा चुके हैं अवतार पनवाड़ी के काम का हरजा हो रहा है। भला तुम्ही बताओ, खाला, ऐसी हालत में यह कैसे जाएँ?"

"कहीं और काम पकड़ने की जरूरत नहीं है। यह लो रूपए। जैसे ही बुखार उतरे, सुलाखी से कहना, कमरे और दालान पर पक्की छत अब पड़ जाए। चहल्लुम आते कितनी देर लगेगी, अच्छा मैं फिर आऊँगी।"

"वह तो कब से चिन्ता में डूबे रहे। आपको दुखी देख उनका मन खराब हो जाता है। कल दौड़कर गए, कल्लू के घर से तिरपाल उठाकर आए और.."

अमतुल ठहरीं नहीं, तेज कदम से वापस आई। अब उन्हें बड़ी जोरों की भूख लग रही थी। दस्तरखान पर बैठ जल्दी-जल्दी से निवाला निगलने लगीं।

हाथ धोते हुए पोती ने उन्हें देखा और हैरत से पूछा, "क्या हुआ, दादी?"

"कुछ नहीं।" गरदन हिलाकर जवाब मिला पोती को अपनी दादी से प्यार है, मगर उनकी कुछ बातें उसे परेशान कर देती है। उसकी नजर में तो सारे इनसान एक जैसे हैं, फिर...?

शवे आशूरा का प्रोग्राम लखनऊ से आने वाला है। सारे घर की बत्ती बुझाए दादी रेडियो सुन रही हैं। मुँह पर दुपट्टा रख फूट-फूटकर रोती "मासूम असगर को भी जालिमों ने पानी न दिया, हुसैन को धोखे से बहुलाकर..."

पोती गौर से दादी को देखती है, परेशानी होती है कि चौदह साल पुराने गम पर इस तरह दादी पिघल जाती हैं, मगर..

भोली-भाली पोती को क्या पता कि हर चीज को बदलने का एक समय होता है। तभी तो अमतुल अपनी नादानी से शर्मिंदा हो पुराने गम में नया गम मिला रही हैं, जिनके चार लड़के शहर की भीड़ में खो गए हैं। उन्हें ढूँढ़ने में उन्हें होश ही न रहा कि पाँचवाँ जो पास में है, उसे समझती। अब शुक्राने के इन आँसुओं को पोती नहीं समझ सकती है अभी उसकी उम्र ही क्या है।

~@~